सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 52; अंक : 8
नवम्बर 2019

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.11.2019 मूल्य – एक प्रति : 20/-, वार्षिक : 360/-

अमृतकण

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो।
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते।
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।

जिस तरह चलनी से सत्तू को शुद्ध करते हैं, उसी तरह जो विद्वान ज्ञान से वाणी को शुद्ध कर उसका प्रयोग करते हैं, वे लोक में मित्र होते हैं, मित्रता का सुख पाते हैं, उनकी वाणी में कल्याणमयी रमणीयता रहती है।

◆ ◆ ◆

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते
उभे नानार्थे पुरुषसिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु-
र्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।

प्रेय और श्रेय दो पृथक्-पृथक् मार्ग हैं, ये दोनों विभिन्न फल देने वाले साधन मनुष्य को बंधन में डालते हैं। प्रेय लोकोन्नति का मार्ग है और श्रेय परलोकोन्नति का मार्ग है। इनमें से श्रेय के ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है, प्रेय को ग्रहण करने वाला पतित हो जाता है।

◆ ◆ ◆

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

जो विद्या और अविद्या इन दोनों को साथ-साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को तरकर ज्ञान से अमरता को प्राप्त कर लेता है।

◆ ◆ ◆

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

जो वेद शास्त्र निहित विधि को छोड़कर (कामना से प्रेरित होकर) मनमाना काम करते हैं, उनको न तो फल की सिद्धि होती है, न सुख मिलता है, न मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते—करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 52 नवम्बर 2019 अंक : 08

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

अंगुष्ठमात्र परिणाम वाले अन्तर्यामी परमपुरुष परमेश्वर सदा ही मनुष्यों के हृदय में सम्यक प्रकार से स्थित हैं और मन के स्वामी हैं, तथा निर्मल हृदय और विशुद्ध मन के द्वारा ध्यान में लाये जाकर प्रत्यक्ष होते हैं, जो साधक इन परब्रह्म परमेश्वर को जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं, और अमृत स्वरूप बन जाते हैं।

— श्वेता. उपनिषद्

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	11
4.	यम दूतों को मारे चिमटे– जगदीश राए बंसल	15
5.	गीता एवं योग– श्री पूर्णचन्द पन्त शास्त्री	19
6.	जब प्रभुवर की करुणा होती– श्री देवीप्रसाद शर्मा	24
7.	एषणाएँ और उनका रूप– श्री ब्रह्मचारी जगन्नाथ	28
8.	अन्दर के पट खोल रे !– श्री शान्तिस्वरूप कपूर	31
9.	साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर– श्री सद्गुरुदेव जी	35
10.	तीन दिवसीय आध्यात्मिक योग सत्संग	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय सदस्यता)	: रु.1000.00

पुरुष विशेष ईश्वरः

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग–विज्ञान के वेत्ता भगवान पतंजलि देव ने अपने अनुभवों की अक्षय निधि योग–सूत्रों के द्वारा प्रकट की है। योग सूत्र संसार में 'योग–दर्शन' के नाम से विख्यात है योग–दर्शन षट् दर्शनों में प्रमुख दर्शन है। इसके अध्ययन करने वाले व्यक्ति स्वरूपानुभूति की ओर बढ़ जाते हैं। इस दर्शन में पुरुष विशेष को ही प्रधानता दी गई है। इसका लक्ष्य है देहस्थ आत्मा अपने स्वरुप में प्रतिष्ठित हो जाये, यानी अपनी अमर साधना के फलस्वरूप बौद्धेय धर्मों को छोड़कर कैवल्य लाभ करे। इस साधना के लिए योगदर्शन में श्री पतंजलि देव ने अभ्यास, वैराग्यादि का वर्णन करते हुए उपाय प्रत्यय पर भी बल दिया है। उपाय प्रत्यय का सहारा लेने वाले योगाभ्यासी साधक श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि आदि के क्रमानुसार अपने आपको साधना में लीन रखते हैं और अपने कठिन परिश्रम के फलानुसार अपने चरमलक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु यह कार्य विपुल वीर्यवान, उत्साही पुरुष ही कर पाते हैं। जो लोग दृढ़ता से साधना–क्रम में लगे रहते हैं, वे अवश्य ही सफल मनोरथ हो जाया करते हैं। प्रायः हर एक जिज्ञासु की भावना रहती है कि उसे सरल से सरलतम् अभ्यास बताया जाये, जिससे वह अपने उच्चतम ध्येय को सहज ही से प्राप्त कर लें। इसको ध्यान में रखते हुए श्री पतंजलि जी के सूत्र–

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूरक इतरेषाम्।

को भली प्रकार समझकर और सरलतम् साधना के उत्कट जिज्ञासु ने यकायक फिर प्रश्न कर दिया कि क्या समाधि प्राप्ति के लिए उपरोक्त वर्णित उपायों के अतिरिक्त कोई और सरलतम उपाय है? इसके उत्तर में एक बहुत ही सरलतम उपाय का दिग्दर्शन ऋषि ने किया–

ईश्वर प्रणिधानाद्वा।

अर्थात् ईश्वर को आत्म–समर्पण करने से भी समाधि लाभ हो सकता है। अर्थात् ईश्वर को आत्म–निवेदन कर देने से ईश्वर साधक के अभिमुख हो जाता है और वह साधक के शुभ–संकल्प को जानकर इदमस्याऽभिमतं अस्मि, अर्थात् यह जो प्यारी चीज चाह रहा है

वह हो जाय। ईश्वर के प्रति इस प्रकार के संकल्प द्वारा साधक को तत्काल समाधि लाभ हो जाया करता है। भगवान पतंजलि के इस प्रकार के आदेश को पाकर साधक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने पुनः पूछने की चाह प्रकट की। उसने पूछा कि जिन्होंने तीव्रतम साधना के द्वारा प्रकृति–पुरुष विवेक को ही अपना मुख्य लक्ष्य बनाया था पर अब समाधि प्राप्ति के भिन्न उपायों के साथ ईश्वर–प्रणिधान को भी सरल एवं उत्कृष्ट साधन बताया है। अतः साधक ने बड़े आश्चर्य से पूछा कि–

प्रधान पुरुष व्यतिरिक्तः कोयं ईश्वरो नामेति।

अर्थात् प्रकृति पुरुष से भिन्न ईश्वर नाम की यह तीसरी वस्तु क्या है और उसकी परिभाषा क्या है? इसके उत्तर में भगवान पतंजलि देव ने बतलाया–

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

अर्थात् क्लेश–कर्म विपाकादिकों से अपरामृष्ट पुरुष विशेष का नाम ईश्वर है। 'पुरुषत्वेन' शब्द बहुसंख्यक पुरुषों का संकेत मिलता है। इसीलिए 'पुरुष विशेषः ईश्वरः' कह करके श्री पतंजलि देव ने पुरुष विशेषत्वेन ईश्वर का प्रतिपादन किया। इसी प्रसंग में योगदर्शन में पाँच क्लेश बताये गये हैं। अच्छे–बुरे फलों से सम्बन्ध रखने वाली क्रिया को कर्म कहते हैं। कर्म फलों का नाम ही विपाक है और विपाक का अनुशरण करने वाली वासना फल–भोग पर्यन्त कर्माशय में पड़ी रहती है, उसी का नाम आशय है। अर्थात् उसी का नाम कर्माशय है। यह क्लेश–कर्म विपाकादि मन में वर्तमान रहते हैं। चेतन पुरुष इनसे बिल्कुल भिन्न है। फिर भी क्योंकि वह बौद्धेय ज्ञान को ग्रहण करता है, इसलिए यह सब क्लेश–कर्म विपाकादि जीवात्मा में कहे जाते हैं। क्योंकि वह बुद्धि बोधात्मा होने के कारण इनके फलों को भोगता है। जैसे लड़ाई के मैदान में लड़ने वाले योद्धाओं की ही जीत और हार होती है। किन्तु वह जय और पराजय मानी जाती है उनके मालिक की। जिसके वेतन–भोगी होकर वे लोग स्वामी की जय के लिए तन, मन न्यौछावर करके लड़ रहे हैं। इसी प्रकार से यद्यपि चित्त–शक्ति अपरिणामिनी है। उसमें किसी प्रकार का परिणाम नहीं आता। न ही उस पर किसी प्रकार का प्रभाव ही पड़ता है। किन्तु बुद्धि के द्वारा दर्शित विषयाकार होने के कारण क्लेश–कर्म विपाकादि आत्मा में मान लिए जाते हैं। किन्तु पुरुष विशेष ईश्वर इनके भोग से सदा सर्वदा ही अपरामृष्ट है। अतः क्लेश कर्म विपाकादि से अपरामृष्ट पुरुष विशेष का नाम ही ईश्वर है।

आत्मा क्लेश–कर्म से मुक्ति पा जाने के बाद इन सबसे अपरामृष्ट है। किन्तु फिर भी इस प्रकार के जितने भी मुक्त पुरुष हैं, वे सबके सब तीन बन्धनों को काट कर केवली भाव

को प्राप्त हुए हैं। किन्तु ईश्वर को उन तीन बन्धनों का सम्बन्ध न कभी था न कभी आगे होगा। जिस प्रकार से मुक्त पुरुष मुक्ति से पहले बन्धन में थे, इस प्रकार ईश्वर कभी बन्धन में नहीं था, और जो आत्मा प्रकृतिलीन है, उनका चित्त साधिकार है, इसलिए उसके बाद में जब भी वह जन्म ग्रहण करेंगे तब उनका बन्धन होगा ही। इस प्रकार ईश्वर का नहीं हो सकता। ईश्वर न कभी बन्धन में था और न आगे कभी आयेगा। वह तो सदा ही मुक्त है एवं सदा ही ईश्वर है। यहाँ पर एक प्रश्न की और कल्पना की गई है कि ईश्वर का जो प्रकृष्ट सत्वज्ञानादि है अर्थात् जो सात्विक ज्ञान है उसका कारण क्या है? या उसका कारण कोई है ही नहीं। इसके उत्तर में बतलाया गया है कि उसका निमित्त कारण वेद है। फिर प्रश्न किया वेद का क्या निमित्त है? उत्तर में बतलाया कि उसका निमित्त कारण ईश्वर है—

एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्वे वर्तमानयोरनादिः सम्बन्धः।

अर्थात् शास्त्रोत्कर्ष और ईश्वर सत्व का परस्पर अनादि सम्बन्ध है यह सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध अनवरत था और अनवरत ही रहेगा। अतः—

एतस्मातद् भवति सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति, तच्च तस्यैश्वर्य्यं साम्यातिशयविनिर्मुक्तं, न तावदैश्वर्य्यान्तरेण तदतिशय्यते, यदेवातिशायि स्यात् तदेव तत्स्यात्, तस्मात् यत्र काष्ठा प्राप्तिरैश्वर्य्यस्य स ईश्वरः, न च तत्समानमैश्वर्य्यमस्ति, कस्माद्? द्वेयारस्तुल्ययोरेकस्मिन् युगपत्कामितेऽर्थे नवमिद मस्तु पुराणमिद मस्त्वित्येकस्य प्रसिद्धावितरस्य प्राकाम्य विघातादूनत्वं प्रसक्तं द्वेयाश्च तुल्ययोर्युगपत्कामितार्थ प्राप्तिर्नास्त्यर्थस्य विरुधात्वात्, तस्माद् यस्य साम्यातिशय विनिर्मुक्तमैश्वर्य्यं स ईश्वरः स च पुरुष विशेष इति।

वह सदा ही ईश्वर है और सदा ही मुक्त है। उसका ऐश्वर्य साम्यातिशय विनिर्मुक्त है। अर्थात् ईश्वर का ऐश्वर्य किसी दूसरे के ऐश्वर्य से दबाया नहीं जा सकता। इसलिए जिसका ऐश्वर्य सभी ऐश्वर्यों का अतिक्रमण करके उच्चतम् पहुँचा हुआ है, वही ईश्वर है। यानी क्लेश, कर्म विपाकादि से अपरामृष्ट आदि सत्ता ईश्वर ही पुरुष विशेष है। उस पुरुष विशेष ईश्वर के स्मरण–चिन्तन से मनुष्य परमानुग्रह भाजन होकर अपने स्वरूप स्थिति को प्राप्त कर लिया करता है।

सम्पादकीय–

जल है तो जीवन है !

–आचार्य (डॉ.) दासलाल जी महाराज

जल है तो हमारा भविष्य है साथ ही शान्ति भी है, सम्पन्नता है, धन धान्य है, समृद्धि है और हमारा भविष्य उज्जवल है। जल की आवश्यकता जीवन में सर्वोपरि है। जल ही जीवन है, इसके बिना जीवन अधूरा है। हमारा आध्यात्मिक, धार्मिक एवं लौकिक जीवन जल पर ही आधारित है।

प्राचीनकाल से ही जल के महत्त्व को समझा गया है। ऋग्वेद में नदी सूक्त में गंगा, यमुना, व्यास, सतलज आदि नदियों का नाम आता है और सूक्तों के द्वारा इन नदियों की स्तुति की एवं प्रार्थना की गई है कि ये नदियाँ हमारे जीवन को धन–धन्य से पूरित करें, सुख समृद्धि देकर हमें खुशहाल करें।

पुराणों में गंगा यमुना आदि नदियों का वर्णन है जिनमें इन नदियों के महत्त्व को बताया गया है।

यदि हम प्राचीन सभ्यता को देखें तो हमें ज्ञात होता है कि हमारे नगर या कस्बे नदी के किनारे ही बसाये जाते थे जिससे खेती के साथ–साथ जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

धार्मिक कार्यों में यथा पूजा आदि में भी सर्वप्रथम जल भरे कलश की स्थापना के साथ ही पूजा कार्य प्रारम्भ होता है और कहा जाता है कि कलश के मुख में विष्णु का वास है। पूजा में कलश स्थापना खुशहाली का प्रतीक माना जाता है।

संस्कृत में पय के दो अर्थ हैं–पय दूध को भी कहते है जल को कहते हैं। जल को रस भी कहा जाता है।

जल के बिना कोई भी प्राणधारी जीव अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकता है। मनुष्य, पशु पक्षी, पेड़–पौधे सभी जल पर आधारित रहते हैं। जल ही इन्हें जीवनी शक्ति प्रदान करता है। गाँव है जहाँ पर पशुओं एवं मनुष्य को पीने के लिए जलाशयों के पानी का ही प्रयोग होता है। जयपुर जैसे शहरों में सरकार का निर्देश है कि छतों पर वर्षा के पानी को नालियों द्वारा नीचे उतारकर उसे टंकियों में जमा करें और पीने के लिए तथा अन्य

आवश्यकताओं के लिए प्रयोग करें। कई बार कस्बों व गाँवों में देखने में आता है कि सरकारी नल तो लगे है उनमें समय-समय पर पानी भी आता है किन्तु कई बार वह नल व्यर्थ में चलते रहते है कहीं-कहीं पर टोंटी ही नहीं है तो कहीं सीधे पाइप से पानी बह रहा है और किसी का उस व्यर्थ बहने वाले पानी की ओर ध्यान ही नहीं जाता। यह भी दुखद बात है हर व्यक्ति को इस ओर ध्यान देना चाहिए ताकि जल के संकट से हम बच सकें। हम सब को इसके लिए जागरूक होने की आवश्यकता है। कई प्रदेशों में जल का विवाद बना हुआ है। कहने वाले तो यहाँ तक कहते है कि अगला विश्व युद्ध पानी को लेकर होगा। पर्यावरण के दूषित होने के कारण जमीन के अन्दर का पानी भी दूषित हो गया है जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है।

देश में वर्षा भी कहीं बहुत अधिक हो रही है और कहीं बहुत कम है। राजस्थान में कहीं बाढ़ आ रही है तो पूर्वी राजस्थान में सूखा है ऐसे ही उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में वर्षा कम हुई है जिससे तालाब, पोखरें तक भर ही नहीं पाये हैं। ऐसी स्थिति में तो जल संरक्षण की आवश्यकता अधिक है।

जल का स्तर–

अगर हम पृथ्वी पर जल का स्तर देखें तो पृथ्वी का लगभग 3/4 भाग जल से घिरा है। किन्तु इसमें से 97 प्रतिशत पानी पीने योग्य नहीं है, पीने योग्य पानी मात्र 3 प्रतिशत है।

इसमें भी 2 प्रतिशत पानी ग्लेशियर एवं बर्फ के रूप में हैं। इस प्रकार सही मायने में देखा जाये तो पानी का केवल 1 प्रतिशत ही पीने योग्य है जो एक बड़ी समस्या है।

कहीं-कहीं पर जल संकट इतना बढ़ गया है कि लोगों को एक-एक घड़े शुद्ध पेयजल के लिए मीलों दूर जाना पड़ता है।

उपनिषदों में आया है—खाये हुए अन्न का सूक्ष्म भाग मन बनता है और जल का सूक्ष्म भाग प्राण बनता है। प्राण के बिना कोई जीवित नहीं रहता यह सब जानते हैं। जल हमारे लिए देव तुल्य है जो वरुण देव के नाम से जाने जाते हैं। जल पृथ्वी से सूक्ष्म है इसलिए पृथ्वी में जल की व्यापकता अधिक है।

जल का मूल स्रोत–

गीता में आया है–

अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म समुदभवः।।

अर्थात्–वर्षा के जल से ही अन्न पैदा होता है और वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ हमारे कर्म के द्वारा किये जाते हैं। जो इस सृष्टि चक्र में अपनी यज्ञ रूपी कर्म की भूमिका नहीं निभाते, वे व्यर्थ ही जीते हैं और पृथ्वी पर भार हैं।

वर्षा का जल पृथ्वी पर पड़ता है। अधिकतर जल नदी, नालों के द्वारा बहकर समुद्र में चला जाता है इसका लाभ हम ले नहीं पाते हैं।

आज हमारी केन्द्र सरकार एवं प्रदेश सरकार इस जल को संरक्षित करने के लिए कटिबद्ध है ताकि इस जल को बर्बाद होने से बचाया जाये और इसे संरक्षित किया जाये और फसल के समय इसे सिंचाई के काम में लाया जा सके तथा शुद्ध पेय–जल उपलब्ध हो सके। केन्द्र सरकार ने इस योजना को लागू करने के लिए कई अरब रुपये खर्च करने की योजना बनाई है।

माननीय प्रधानमन्त्री जी ने **'मन की बात'** कार्यक्रम के अन्तर्गत इस पर चर्चा की है और जो स्वयं सेवी संस्थायें इस दिशा में काम कर रही हैं उनकी सराहना की है। छत्तीसगढ़ के ऐसे संस्थान का जिक्र उन्होंने किया था। राजस्थान में कई जगहों पर ऐसे तालाब हैं जो सरकार के सहयोग से तैयार होते हैं। इस प्रकार के टैंक बनाये जाते हैं जो लगभग एक बीघे के क्षेत्रफल में होते हैं। देश के अधिकतर किसान वर्षा पर निर्भर रहते हैं। आज भी ऐसे बहुत सारे भारत के कई राज्यों में शुद्ध पेयजल टैंकर और ट्रेन के द्वारा पहुँचाया जा रहा है लेकिन फिर भी शुद्ध पेयजल की पूर्ति नहीं हो पाती है।

आगामी वर्षों में जल संकट की समस्या और अधिक हो जायेगी–

विश्व आर्थिक मंच ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि दुनियाभर में 75 प्रतिशत से ज्यादा लोग पेयजल की कमी के संकटों से जूझ रहे हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अध्ययन के अनुसार दुनिया भर में 86 प्रतिशत से अधिक बीमारियों का कारण असुरक्षित एवं दूषित पेयजल है।

दुनिया में लगभग 1600 जलीय प्रजातियाँ दूषित जल के कारण विलुप्त होने के कगार पर हैं।

आज विश्व में करीब 1.1 अरब लोग दूषित जल पीने के लिए मजबूर हैं।

एक रिपोर्ट के अनुसार–भूजल की 80 प्रतिशत जलराशि को हम अब तक प्रयोग में ला चुके हैं।

भूगर्भ वैज्ञानिकों का मानना है कि बुंदेलखण्ड, अवध, कानपुर, हमीरपुर, इटावा,

आगरा जैसे जिलों में अधिक पानी दोहन करने से यहाँ की कुछ जमीनों में दरार पड़ गयी हैं। वैसे भी हमारे देश में जलस्तर बहुत नीचे पहुँच गया है। आगरा क्षेत्र में तो पानी या तो खारा है या फिर कड़वा है जिससे फसल भी अच्छी नहीं हो रही है।

ऐसी स्थिति में यदि जल संरक्षण और जल को प्रदूषित होने से नहीं बचाया गया तो अगले कुछ वर्षों में यह समस्या सबके लिए चुनौतीपूर्ण साबित होगी।

22 मार्च 2010 को विश्व जल दिवस पर संयुक्त राष्ट्र के महासचिव **बान की मून** ने अपने संबोधन में सभी राष्ट्रों से यही बात कही कि जल ही जीवन है और इस ग्रह के सभी प्राणियों को आपस में जोड़ने का साधन भी यही है। जल संरक्षण जागरण के अन्तर्गत अभी पिछले माह 21 अगस्त को आगरा के फतेहपुर सीकरी में अमर उजाला अखबार के सौजन्य से एक जल संरक्षण पर गोष्ठी आयोजित की गयी थी जिसमें नगर परिषद फतेहपुर सीकरी के सभी अधिकारी गण उपस्थित हुये थे। उसमें निम्न बिन्दुओं पर विचार व्यक्त किये गये।

जल संचय अभियान के अन्तर्गत घरेलू उपाय–

1. मंजन करते समय टोंटी को खुला न रखें।
2. कपड़े धोते समय व खंगालते समय नल को बन्द कर दें।
3. ओवर हैड टैंकों में पानी की बर्बादी रोकने के लिए ओवरफ्लो वाल्व का प्रयोग करें या घंटी का प्रयोग करें।
4. शौचालयों में साफ पानी की बजाय उपयोग किए हुए पानी का प्रयोग करें।
5. जरूरत न होने पर फ्लश न चलायें।
6. बचे हुए पानी को फेंकने की बजाय पौधे या फर्श की सफाई में प्रयोग करें।
7. घर के नलों व पाइप के लीकेज को समय–समय पर चेक करें।
8. नहाने में शावर का कम प्रयोग करें।
9. घर के फर्श को धोने की बजाय पोंछा लगायें जिससे पानी का अपव्यय नहीं हो।

सार्वजनिक स्थानों पर जल संरक्षण के उपाय–

1. सार्वजनिक पार्क, गली, मोहल्ले, अस्पताल, स्कूल आदि में जहाँ कहीं भी टोंटियाँ खराब हों या पाइप से पानी लीक हो रहा हो तुरन्त जलकल ऑफिस या सम्बन्धित व्यक्ति को सूचना दें जिससे हजारों लीटर पानी की बर्बादी रोकी जा सके।
2. बाग–बगीचों एवं घर के आस–पास पाइप से पानी देने की बजाय वाटर केन का प्रयोग करने से पानी की बचत होती है।

3. सिंचाई क्षेत्र हेतु कृषि के लिए कम लागत की आधुनिक तकनीकों को अपनाना जल संरक्षण के उपाय है।

4. हरियाणा और पंजाब के राज्यों में सब्जी आदि के लिए पोलि हाउस बनाये जाते है उनमें पौधों की सिंचाई के लिए पाइपों में छोटे–छोटे नल लगे रहते हैं जिनसे पौधों की जड़ों में ही बूँद–बूँद से पानी चला जाता है इससे पानी बर्बाद नहीं होता।

5. एक टपकते नल से प्रति सेकण्ड एक बूँद बर्बाद होने से एक माह में 760 लीटर पानी व्यर्थ चला जाता है इसे हम बचा सकते हैं क्योंकि बूँद–बूँद से घड़ा भरता है और बूँद–बूँद से खाली भी हो जाता है।

हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी इस दिशा में जल संकट को देखते हुए और भी ठोस कदम उठा रहे हैं और कई अरबों रुपये इन योजनाओं में खर्च भी कर रखे हैं।

उत्तर प्रदेश में भी हमारे तपस्वी, यशस्वी मुख्यमंत्री जी भी जल संकट को चुनौती के रूप में ले रहे हैं और इसे गंभीरता से ले रहे हैं।

इसलिए आज इस बढ़ते जल संकट को देखते हुए स्थान–स्थान पर गोष्ठी रखी जा रही है।

आइये हम सब जल संरक्षण water conservation के महाअभियान में सहयोग दें और जल संरक्षण के संदेश को जन–जन तक पहुँचायें ताकि हमारे अपने सुनहरे भविष्य के साथ–साथ आने वाली पीढ़ी सुखपूर्वक जी सके और सम्पूर्ण मानव का उपकार हो सके।

लोग कहते हैं ''पहले योग्य बनो, फिर इच्छा करो।'' वेदान्त कहता है ''पहले योग्य बनो, इच्छा करने की कोई आवश्यकता नहीं।'' जो पत्थर दीवार में लगाए जाने योग्य है, वह रास्ते में पड़ा हुआ कभी नहीं मिल सकता। यदि तुम परमात्मा के अटल नियम द्वारा अपने में योग्यता उत्पन्न करोगे तो प्रत्येक वस्तु आप से आप तुम्हारी ओर चली आयेगी। जलता हुआ लैम्प पतंगों को बुलाने नहीं जाता, पतंगे स्वयं लैम्प के चारों ओर इकट्ठे होते हैं।

।। ॐ श्रीरामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

ब्रह्महृद में, श्री अक्रूर जी को जो जल में भगवान नारायण के दर्शन हुये, उससे वे भाव विभोर हो स्तुति करने लगे। प्रभो! ब्रह्मा तो आपके नाभिकमल से उत्पन्न हैं, रजस् से युक्त है इसलिए वे भी आपको ठीक-ठीक नहीं जानते। योगी स्वयं अपने अन्तःकरण में स्थित 'अन्तर्यामी'' के रूप में, समस्त भूत-भौतिक पदार्थों में व्याप्त 'परमात्मा' के रूप में और सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डल में स्थित 'इष्ट-देवता' के रूप में तथा उनके साक्षी महापुरुष एवं नियन्ता ईश्वर के रूप में साक्षात् आपकी ही उपासना करते हैं।

त्वाम् योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम्।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधव:।।4।।

अ. 40 स्क. 10

भगवान अनेक लोग शिवजी के बतलाये मार्ग से, जिसके आचार्य भेद से अनेक अवान्तर-भेद भी हैं, शिवस्वरूप आपकी ही पूजा करते हैं। इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्।
बह्वाचार्यविभेदन भगवन् समुपासते।।8।।

अ. 40, स्क. 10

अक्रूर जी भगवान को सभी अवतारों का गुणगान करते हुये बारम्बार नमस्कार करते हैं। प्रभो! आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। प्रभो! आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए। जल में अपने दिव्यरूप दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया। अब अक्रूर जी जल से बाहर आये। भगवान श्री कृष्ण ने उनसे पूछा-चाचाजी। आपने पृथ्वी, आकाश या जल में कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या? क्योंकि आपके मुखमण्डल से ऐसा ही भान हो रहा है।

अक्रूर जी ने कहा-प्रभो! सारे जगत में जो अद्भुत पदार्थ है, वे सब आपमें ही हैं। क्योंकि आप विश्वरूप हैं। भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी को लेकर अक्रूर जी दिवस अवसान पर मथुरा पहुँचे। नन्दबाबा और अन्य ब्रजवासी पहले ही पहुँचकर मथुरा के बाहरी

उपवन में रुक कर भगवान की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अक्रूर जी सभी को अपने घर लिवा जाने हेतु भगवान श्रीकृष्ण से आग्रह करने लगे। भगवान ने कहा—चाचाजी! मैं और दाऊ भैया आपके घर आयेंगे परन्तु पहले इस यदुवंशियों के द्रोही कंस को मारकर तब अपने सभी सुहृद–स्वजनों का प्रिय करूँगा।

दूसरे दिन तीसरे पहर बलराम जी तथा अन्य ग्वाल–बालों के साथ श्रीकृष्ण मथुरा भ्रमण हेतु निकले। नगर, उपवन की शोभा देखते हुये मथुरा नगर के सड़क बाजार की स्वच्छता का अवलोकन करते हुये मौज–मस्ती में मित्रों के साथ घूमते रहे। यहाँ मथुरा नगरी के वैभव का बड़ा विस्तार से काव्यात्मक वर्णन है। भगवान घूमते हुये ग्वाल–बालों संग राजपथ से मथुरा नगरी में प्रवेश किया।

पथ पर आता हुआ, राज घराने के वस्त्रों को लिये हुये धोबी मिला। उसे देखकर भगवान ने मधुरता से कहा—भाई! तुम हमें ऐसे वस्त्र दो, जो हमारे शरीर पर ठीक–ठीक आ जावें। वह अहंकारी राजा कंस का सेवक होने के कारण क्रोध में भर कर अपशब्द कहा और कहा कि तुम सभी उदण्ड राजा का धन हड़पना चाहते हो। वह अनाप–सनाप बोलता रहा। भगवान श्रीकृष्ण ने तनिक कुपित होकर उसे एक तमाचा जड़ दिया जिसके फलस्वरूप उसका सिर धड़ाम से धड़ से अलग हो जमीन पर गिर गया। भगवान श्रीकृष्ण एवं बलराम तथा ग्वाल बाल ने मनमाने ढंग से वस्त्र लेकर पहन लिये।

जब इस प्रकार वस्त्रों में अव्यवस्थित रूप में आगे जा रहे थे तो उन्हें एक दर्जी मिला। वह भगवान के अनुपम सौन्दर्य देख प्रसन्न हुआ और उसने रंग–बिरंगे वस्त्रों को व्यवस्थित ढंग से सजा दिया। भगवान उस दर्जी पर बहुत प्रसन्न हुये। उसे इस लोक में धन–सम्पत्ति, बल–ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और दूर तक देखने–सुनने की इन्द्रिय सम्बन्धी शक्तियाँ दीं और मृत्यु के बाद सारूप्य मोक्ष भी दे दिया।

तस्य प्रसन्नो भगवान प्रादात् सारूप्यमात्मनः।
श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम्।।42।।

अ. 41 स्क. 10

इसके बाद भगवान सुदामा माली के घर गये। वह पृथ्वी पर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया। फूलों के सुन्दर हार, चन्दन आदि पूजन सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजा किया। वरदायक प्रभु ने सुदामा को श्रेष्ठ वर दिये। सुदामा ने वर माँगते हुये कहा—प्रभो! आप ही समस्त प्राणियों के आत्मा हैं। आपके चरणों में अविचल भक्ति हो। आपके भक्तों में मेरा मैत्री सम्बन्ध हो और सभी प्राणियों के प्रति अहैतुक दया का भाव बना रहे। अगले अध्याय में

कुब्जा पर कृपा, धनुष भग और भयभीत कंस की मनोदशा का वर्णन है।

सुदामा माली के घर से निकलकर जब भगवान राजपथ पर जा रहे थे, उन्होंने एक युवती स्त्री को देखा। सुन्दर मुख वाली परन्तु शरीर से कुबड़ी। वह अपने हाथ में चन्दन पात्र लिये आ रही थी। प्रेम रस दान करने वाले श्रीकृष्ण कुब्जा पर कृपा करने हेतु उससे पूछा–सुन्दरी! यह अंगराग किसके लिये ले जा रही हो यह उत्तम अंगराग हमें भी दो इस दान से तुम्हारा परम कल्याण होगा। कुब्जा ने कहा—मैं महाराज कंस की प्रिय दासी हूँ। मेरा नाम त्रिवक्रा (कुब्जा) है। इस अंगराग को ग्रहण करने हेतु आप दोनों से कोई उत्तम पात्र नहीं है। भगवान के रूप माधुरी को देख कुब्जा का हृदय उन पर न्यौछावर हो गया। उन दोनों भाइयों को वह सुन्दर अंग राग दे दिया। तब श्रीकृष्ण अपने शरीर पर पीले रंग का एवं बलराम जी लाल रंग का अंगराग लगाकर सुशोभित हुये। अब भगवान ने अपने चरणो से कुब्जा के दोनों पंजों को दबा लिया और हाथ ऊँचा करके दो अंगुलियों से उसके ठोड़ी पर लगा, उसके शरीर को तनिक उचका दिया। उचकाते ही उसके सारे अंग सीधे और समान हो गये। प्रेम एवं मुक्ति दाता प्रभु के स्पर्श से वह उत्तम सौन्दर्यवती युवती बन गयी।

सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा।
मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा।।8।।

अ. 42 श्लो. 10

कुब्जा बोली–वीरशिरोमणे! आइये, घर चलें। आपने मेरे चित्त को मथ डाला है। पुरुषोत्तम! मुझ दासी पर प्रसन्न होइये।

भगवान ने हँसते हुये कहा–सुन्दरी। मैं अपना कार्य पूरा करके अवश्य तुम्हारे यहाँ आऊँगा। उसका परितोष कर श्रीकृष्ण चलते हुये पुरवासियों से पूछते हुये यज्ञशाला रंगशाला पहुँचे, वहाँ उन्होंने, इन्द्रधनुष के समान एक अद्भुत धनुष देखा। अलंकृत उस धनुष को बहुत सैनिक रखवाली कर रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण ने रक्षकों के रोकने पर भी उस धनुष को बलात् उठा लिया और देखते–देखते उस पर डोरी चढ़ायी और एक क्षण में खींचकर मध्य से दो टुकड़े कर डाले। धनुष टूटने से बड़ा आवाज हुआ जिससे कंस भयभीत हो उठा। उधर सैनिक यह देख कर श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर कर उन्हें पकड़ लेने की इच्छा से चिल्लाने लगे।

तब श्रीकृष्ण जी एवं बलराम जी ने टूटे धनुष खण्ड से उन सबों का काम तमाम कर डाला। यज्ञशाला के प्रधान द्वार से निकल कर मथुरा नगरी में विचरने लगे। जब सूर्यास्त होने लगा तब दोनों भाई ग्वाल–बालों संग नगर के बाहर अपने पड़ाव पर लौट आये।

इधर जब कंस ने सुना श्रीकृष्ण और बलराम ने धनुष तोड़ डाला और रक्षकों को मार डाला तब वह बहुत डर गया, उसे रात्रि में देर तक नींद न आयी। उसे जाग्रत व स्वप्न में नाना प्रकार के मृत्यु सूचक अपशकुन दिखायी दिये।

जाग्रत अवस्था में देखा जल या दर्पण में उसे अपना शरीर तो दीखता है पर सिर नहीं दीखता। आँखों के आगे चन्द्रमा, तारे, दीपक की दो–दो ज्योतियाँ दिखायी पड़ती हैं। छाया में छेद दिखाई पड़ता है। कान बन्द करने पर प्राणों का घूँ–घूँ शब्द नहीं सुनायी पड़ता। वृक्ष सुनहले प्रतीत होते हैं और बालू या कीचड़ में पैरों के निशान नहीं पड़ते।

कंस ने स्वप्नावस्था में देखा वह प्रेतों के गले लग रहा है, गधे पर चढ़कर चलता हुआ विष खा रहा है। उसका शरीर तेल से सरोबार तथा अड़हुल की माला पहने नग्न होकर कहीं जा रहा है।

वह सब देखकर मृत्यु से डर गया और नींद न आयी।

प्रातः कंस ने मल्ल–क्रीड़ा महोत्सव प्रारम्भ करवाया। मंच भली प्रकार फूलों एवं बन्दनवारों से सजाया गया था। राजा कंस, अपने मंत्रियों के साथ मंचासीन हुआ। अखाड़े में चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल आदि प्रधान पहलवान बाजों की उत्तेजित ताल पर उत्साहित होकर अखाड़े में बैठ गये।

भोजराज कंस ने नन्द आदि गोपों को बुलाया और उन्हें भेंट देकर एक मंच पर बैठवाया।

इस संसार में आये हो तो अब उठो, जल्दी करो और उन उदार प्रभु की शरण में जाओ। यह देह तो देवताओं की है, धन सारा कुबेर का है, इसमें मनुष्य का क्या है ? देने–दिलाने वाला, ले जाने–लिया ले जाने वाला तो कोई और ही है। इसका यहाँ क्या धरा है; रे मूरख ! क्यों नाशवान के पीछे भगवान की ओर पीठ फेरता है ?

यम दूतों को मारे चिमटे

जगदीश राए बंसल मो. 9212434003

हमारे आपके और प्राणी मात्र के भाग्य विधाता अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक अकारण दयालु प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्यदेव तारणहार गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हर समय हर स्थान पर अपने लाड़ले बच्चों पर अपनी कृपा वर्षा करते रहते हैं। किसी बच्चे के कलिष्ट संस्कार प्रत्यक्ष प्रकट हो कर अथवा किसी बच्चे के संस्कार अपने संकल्प मात्र से निदान करते रहते हैं। इसी प्रकार के कलिष्ट संस्कारों का निदान अपने 87 वर्षीय वरिष्ठ आदरणीय गुरु भाई लखनऊ निवासी श्री अयोध्या प्रसाद श्रीवास्तव जी ने दो प्रसंग सुनाए। इससे पहले हम लखनऊ की चर्चा कर लेते हैं। गोमती नदी के तट पर स्थित उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ नवाबों की नगरी कही जाती है। लखनऊ सभ्यता सद्व्यवहार और मृदु भाषा के लिए तो विख्यात है ही, साथ–साथ मीठे–मीठे सुगन्धित दशहरी आम, गजक, बिरयानी की याद आते ही मुँह में पानी आ जाता है। अचकन आदि की कढ़ाई की नजाकत जहाँ सिर चढ़कर इठलाती है, वहीं लखनऊ की शेर ओ शायरी मूछें खड़ी कर देती है। वाह, वाह, धन्य है लखनऊ।

इसी मखमली नगरी लखनऊ में योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रथम कृपा पात्र शिष्य और हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई श्री मोहन लाल अग्रवाल जी ने अपने भवन के आधे भाग में अखिल ब्रह्माण्ड नायक महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगाधिपति गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के दिव्य स्वरूपों को स्थापित करके गुरु दरबार बनाया जो श्री सिद्धयोग आश्रम के नाम से जाना जाता है। शेष आधे भाग में स्वयं का आवास बना है। इस आश्रम की दीर्घकालीन सेवा का श्रेय गुरु देव जी के मुख्य पार्षद श्री ओम प्रकाश पालीवाल जी को जाता है।

आईए, आदरणीय गुरु भाई श्रीवास्तव जी प्रथम प्रसंग में कहते हैं कि मैं मूल रूप से ऐत्मादपुर (आगरा) का रहने वाला हूँ। मैंने सन् 1959 में गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से दीक्षा ली थी। उस समय मैं रेलवे में सेवारत था तथा सन् 1990 में रेलवे सेवा से मुक्त हुआ हूँ। दीक्षा के शीघ्र पश्चात् एक दिन की उत्कृष्ट घटना है कि मैं हर दिन की तरह एक प्रातः दस बजे घर से अपने रेलवे कार्यालय में पहुँचा ही था कि मेरे पीछे–पीछे हमारे किराए

के मकान मालिक का लड़का दौड़ा–दौड़ा मेरे पास आकर बोला, कि अंकल जी, आण्टी जी बेहोश हो गई हैं, उसकी आँखें बन्द हैं, मुट्ठी बन्द है। और बताऊँ अंकल जी वो किसी से बोल नहीं रही हैं। आप तुरन्त घर चलिए। हैरान परेशान से उस दुलारे की बात सुन कर मुझे अवसाद ने आ घेरा। उदासी मुझे गोद में लेकर लोरियाँ देने लगी। पूर्वकृत कर्म फल सोच–कर मैं गुरुदेव–गुरुदेव कहता–कहता यथा शीघ्र घर पहुँचा। भीड़ से घिरी पत्नि श्रीमती मालती को देख कर मेरे होश उड़ गए। यह क्या अनर्थ हो गया गुरुदेव? रक्षा करो गुरुदेव रक्षा करो। परिवार बिखर जाएगा महाराज, बरबादी से बचा लो सरकार ..... आप तो योग योगेश्वर है, सर्व समर्थ है गुरुदेव.... मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? इसे गुरु कृपा ही कहिएगा कि मैं कुछ संभल कर प्रात: कालीन आरती का शेष बचा जल ले आया और जय गुरुदेव .... जय गुरुदेव कहते–कहते श्रीमती मालती पर छींट दिया।

मेरा मतलब अवश्य पूरा होगा,
श्रद्धा का इरादा अधूरा न होगा।
जिसके गुरु हैं ऐसे अन्तर्यामी,
उसके जीवन में कभी अंधेरा न होगा।।

चमत्कार! महान चमत्कार! आ गई लहर शिवा के मन में, चेतना आ गई मालती के तन में, खुसी दौड़ गई सारे घर में। श्रीमती जी के हाथ पैर हिले और अन्तत: मालती ने आँखें खोल दीं। बोलिए प्राणदाता त्रिलोकी नाथ की जय। पश्चात् मैंने भाव विह्ल और मृदु वाणी से मालती जी से पूछा कि श्रीमती जी कैसे क्या हुआ था?

प्रत्युत्तर में मालती जी ने बतलाया कि मैं यकायक चक्कर खा कर गिर पड़ी। मुझे यमदूत लेकर जाने लगे, मगर तत्काल वहाँ पर संकट मोचन विश्वनाथ गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रकट हो गए। गुरु जी ने उन दूतों से कहा, छोड़ दो इसे, यह मेरी बच्ची है। दूत बोले–हम इसे लेकर जाएँगे, हमें यमराज महाराज का आदेश है, हम नहीं छोड़ सकते, आप बीच में से हट जाइए। जब यमदूत जिद करने लगे तो गुरुदेव ने दूतों को ओजस्वी फटकार लगाई, खूब वाद–विवाद चला और अन्तत: गुरुजी ने दूतों को चिमटे मार–मार कर भगाया। फिर गुरुदेव मुझ से बोले, लल्ली तेरा कुछ अनिष्ट नहीं होगा, फिकर मत कर, प्रभू जी हैं न। श्रीमती जी से यह सब सुनकर मैं भावुक हो गया। गुरु दरबार में दण्डवत प्रणाम किया"। गुरु देव तो गुरु देव ही हैं। न जाने किस पूर्व कृत शुभाशुभ कर्म से मिले हैं इतने महान गुरु साक्षात् ब्रह्माण्ड नायक ....।

जितने तारे गगन में जे उतने शत्रु होय।
जिस पर कृपा गुरु देव की, बाल न बिंगा होय।।

श्रीमती मालती की पथरी छू मंतर : दूसरे प्रसंग की यह विलक्षण घटना वर्षों पुरानी है।

बात यूँ हुई कि किसी क्लिष्ट संस्कार के कारण मेरी पत्नि श्रीमती मालती श्रीवास्तव को भयानक उदर पीड़ा सताने लगी। घरेलू नुस्खों से जब कोई राहत नहीं मिली तो मैं उसको तुरन्त अपने रेलवे के अस्पताल में ले गया। रेलवे के विख्यात चिकित्सक ने प्राथमिक उपचार करने के पश्चात् बताया कि मरीज को अस्पताल में दाखिल करना होगा। पश्चात् कई निरीक्षण किए गए। सब रिपोर्ट देख कर डॉ. साहिब ने कहा कि मिस्टर श्रीवास्तव मालती के पेट में पथरी है जिसका एकमात्र उपचार ऑपरेशन है। हम कल प्रात: ऑपरेशन कर देंगे। तब तक हम इसे बेहोशी का इन्जेक्शन दे कर टाइम पास कर देंगे। आप निश्चिन्त होकर जाइए, खतरे वाली कोई बात नहीं। मुझे पिछली घटना ताजा याद हो आई अत: दया–निधि के रहमत पर सब चिन्ता छोड़, घर लौट आया। कहते भी हैं–

संकट को देख वीर घबराया नहीं करते।
कुछ ऐसे फूल हैं जो मुरझाया नहीं करते।।

घर पर अपने दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त होकर गुरुओं के गुरु अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं जगत नियन्ता आशुतोष गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की साय–कालिन आरती–आराधना आदि उपरान्त मैं विश्राम की नीयत से जाकर अपने बिस्तर पर लेट गया और गुरु मन्त्र करते–करते न जाने कब निद्रा मग्न हो गया। इसे मेरे संस्कारों का वेग ही कहिए कि रात्री की मधुर निद्रा वेला के मध्य मैं एक उत्कृष्ट स्वप्न में खो गया। मैंने देखा कि एक सफेद धोती कुर्ता धारी दैदीप्यमान महाशय जी अस्पताल में मेरी पत्नि श्रीमती मालती–जी के कक्ष में प्रवेश किए हैं....। प्रात: काल चार बजे उपरान्त जब मेरी निद्रा भंग हुई तो अभी रात्रि के ताजे–ताजे स्वप्न को याद करके मैं गद–गद हो गया। मन ही मन सँवाई की राम नवमी जैसे लड्डू फूटने लगे। आनन–फानन में नित्य कार्यक्रम पश्चात् सर्व समर्थ दादा गुरु एवं सिद्धों के सरदार गुरु देव भगवान की दिव्य आरती–पूजा–अर्चना की। कल अस्पताल में डॉ. साहिब ने मुझ से कहा था कि प्रात: सौ ग्राम माखन लेकर आना मालती जी को खिला कर दो अन्य टैस्ट लेने हैं। अत: मैं माखन के साथ इस हर्षोल्लास के साथ अस्पताल को चला कि गुरुदेव जी मेरी भावना के अरमानों को पृथ्वी से भी बड़ा आकार देंगे। क्योंकि–

वह तैरते–तैरते डूब गए, जिन्हें अभिमान था।
वह डूबते–डूबते तैर गए, जिन्हें अरमान था।

अत: मैं पहला कदम गुरुदेव शरणम् और दूसरा कदम गुरुदेव नमामी कहते–कहते अस्पताल में प्रवेश किया। मेरी चाहत को चार चाँद तो उस समय लग गए जब श्रीमती जी को अस्पताल प्रांगण में चहल कदमी करते पाया। मेरे मन का मोर तो तब नाच उठा जब मेरी मालती ने कहा कि चलो–घर चलो। मैंने अपनी बात अपने मन में ही रखी और

उत्सुकता वश जानना चाहा कि मैडमजी क्या बात है बतलाइये? मगर लीला धारी की लीला को उसने स्वयं तक ही सीमित रखा और जब तक दुनिया में रहीं, वह बात भी गुप्त ही रही। अस्तु। गुरु इच्छा का चोला ओढ़कर मैं डॉ. साहिब के पास गया और आवश्यक औपचारिकता पश्चात् मैंने झट से श्रीमती मालती को रिलिव करने की महत्वाकांक्षा की। डॉ. साहिब अचम्भित होकर आक्रोश में बोले, यह आप क्या कह रहे हैं? पढ़े लिखे हैं, समझदार है, यह पथरी का रोग है, किसी भी समय विकराल रूप ले सकता है, और जीवन को खतरे में डाल सकता है। हमने ऑपरेशन की तैयारी लगभग पूरी कर रखी है, आप माखन... मैंने डॉ. साहिब की बात बीच में ही काटते हुए मखमली स्वर से छुट्टी प्रार्थना की पुनरावृत्ति की तो वह झटक से बोले–ठीक है, आप मुझे लिख कर दे दो। मैंने भवभय हारी, कल्याण घन, गुरुदेव भगवान के दम पर लिखित में दे दिया। क्योंकि जिस के सिर पर उस जगत नियन्ता के चरण कमल हों उसको किसी भी परिस्थिति में डरने की क्या आवश्यकता है। अत: अस्पताल से रिलीव होकर गुरु गान करते शान से घर लौट आए।

उधर डॉ. महोदय यह सोचने पर विवश हो गए कि श्रीवास्तव जैसे बुद्धिमान बाबू यूं ऑपरेशन थियेटर का खुला दरवाजा छोड़ कर, इतने सीरियस पेशेन्ट को बिना इलाज कराए, घर ले जाने का रिस्क कैसे उठा सकते हैं? ऐसा न कभी सुना, न कभी देखा। कोई गहरा राज है और यह राज मुझको भी जानना चाहिए।

अन्तत: एक दिन उसके धैर्य का बाँध टूट गया और उसने मुझ से श्रीमती मालती को पुनः जाँच के नाम पर अस्पताल लाने का लच्छेदार सुझाव दे डाला। अगली प्रात हम अस्पताल पहुँच गए। डॉ. साहिब ने दे दनादन आवश्यक–अनावश्यक तमाम टैस्ट कर डाले। सभी टैस्ट रिपोर्ट नारमल देख कर उसने आश्चर्यचकित भाषा में पूछा कि मि. श्रीवास्तव बिना ऑपरेशन के यह चमत्कार कैसे हुआ? अब मैं डॉ. साहिब को सर्वभौम अकाट्य सत्य कैसे समझाऊँ कि अवनि मण्डल पर अवतरित कलिमल जीवों के कल्याणार्थ जिस चमत्कारी के आशीर्वाद से यह चमत्कार हुआ वह सर्जनों के सर्जन, न्यायधीशों के न्यायधीश, योगियों के परमतेजोमय योगाधीश, काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले जादूगर हैं। ऐसे प्राण दाता ऋद्धि सिद्धि के स्वामी के श्री चरणों में हमारा लख–लख दण्डवत प्रणाम ..... प्रणाम ..... प्रणाम .....।

जय गुरु देव!

गीता एवं योग

श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

योग के अन्तर्विभाग

पूर्वोक्त प्रकरणों में इस बात का संकेत किया गया है कि जीवात्मा ईश्वर का सनातन अंश होने के कारण नित्य, शुद्ध, बुद्ध तथा मुक्त है किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण वह बन्धन में है। योग की अमर निधि को पाकर वह इन बन्धनों से मुक्त होकर ईश्वर को प्राप्त हो सकता है। यह समझाना ही गीता का उद्देश्य है। गीता में योग के तीन अन्तर्विभाग किये गये हैं–ज्ञानयोग, कर्मयोग, तथा भक्तियोग।

(1) ज्ञानयोग–

दृश्यमात्र सम्पूर्ण जगत माया का कार्य होने से क्षणभंगुर, नाशवान, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य चेतन, निर्विकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ईश्वर का ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर परम पुरुष परमात्मा में एकीभाव से नित्य स्थित रहने का नाम ही ज्ञानयोग है।

श्रद्धालु और साधनपरायण व्यक्ति ही ज्ञान का अधिकारी है। यथा–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

श्रद्धालु, संयमी तथा तत्परतापूर्वक साधन में लगे रहने वाला योग साधक ही ज्ञान को प्राप्त होता है और ज्ञान पाकर वह शीघ्र ही परमात्मा की प्राप्ति–रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। इसलिए–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।

इसलिए तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों की शरण में जाकर उनसे उसे जान। तुम्हारे दण्डवत् प्रणाम करने से, भक्तिपूर्वक सेवा करने से तथा विनीतभाव से जिज्ञासा प्रकट करने पर वे तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन तुम्हें ज्ञान का उपदेश दे देंगे।

गीता के तेरहवें अध्याय में श्लोक संख्या 7 से 11 तक ज्ञान का यथार्थ स्वरूप सविस्तार

वर्णित किया गया है। यथा–

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी भी प्रकार न सताना, मन, वाणी की सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहरी तथा भीतरी शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर पर पूरा नियन्त्रण, इस लोक तथा परलोक के सम्पूर्ण भोगपदार्थों में आसक्ति का न होना, अहंकार का न होना, जन्म–मृत्यु–बुढ़ापा और रोगादि दुःखों का बार–बार चिन्तन करना, स्त्री–पुत्र घर और धनादि में ममता न रखना, प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में न तो प्रसन्न होना और न दुःखी होना, केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर को ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके श्रद्धा–भक्ति सहित उस परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करना, एकान्त और पवित्र स्थान में रहने का स्वभाव, विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना तथा अध्यात्म ज्ञान में नित्य–स्थिति और परमात्मा को सर्वत्र अनुभव करना यह सब ज्ञान है। इसी ज्ञान की प्राप्ति हेतु कर्मयोग, भक्ति योग तथा अष्टांगयोग का निर्देशन किया गया है।

(2) कर्मयोग–

फल और आसक्ति को त्यागकर अपने वर्ण आश्रम के अनुसार सभी प्रकार के कर्त्तव्य कर्मों को भगवत् प्रीत्यर्थ करना कर्मयोग कहलाता है। जो व्यक्ति जीवनभर पुण्यमय तथा लोकहित के कार्यों को करते रहते हैं किन्तु वे न तो फल की इच्छा रखते हैं और न अपने को उन कर्मों का कर्ता समझते हैं वे व्यक्ति कर्मयोगी कहलाते हैं। इस प्रकार अनासक्त भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है और राजर्षि जनक की भांति परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। फलेच्छा को त्यागकर कर्म करना योगारूढ़ होने का उत्तम साधन है। छठे अध्याय के तीसरे श्लोक में यह बात स्पष्ट की गई है–

आरुरुक्षो मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा रखने वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्कामभाव से कर्म करना ही हेतु कहा है। अर्थात् कर्म करने से ही वह योगारूढ़ हो सकता है, और योगारूढ़ हो जाने पर सर्व–संकल्पों का अभाव ही उसके कल्याण का हेतु बन जाता है अर्थात् उसके कर्म स्वयं ही छूट जाते हैं। इसलिए भगवान का आदेश है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते।।

हे अर्जुन! आसक्ति को त्यागकर तथा सफलता और असफलता में समान बुद्धि रखकर योग में स्थित हुआ तू कर्म करता जा। क्योंकि समत्वभाव ही योग कहलाता है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

कर्म करने मात्र में तेरा अधिकार है फल प्राप्ति में नहीं। इसलिए फल की इच्छा मत रख और कर्म करना भी मत छोड़–

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तः–श्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।

हे अर्जुन! अज्ञानीजन फलेच्छा को रखते हुए ममता एवं आसक्तिपूर्वक जिस प्रकार कर्मों को करते हैं। विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह भी लोक शिक्षा एवं लोकहित के लिए आसक्ति को त्यागकर उसी प्रकार कर्म करता रहे–

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।।

कर्मयोगी किसी प्रकार की ममता एवं आसक्ति न रखते हुये भी अपने शरीर, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों से अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।

उपरोक्त प्रकार से कर्म करने वाला योगी कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाता है और वह भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

यही कर्मयोग का स्वरूप है। इस योग को समत्वयोग, निष्काम कर्मयोग, अनासक्तियोग आदि नामों से भी वर्णित किया गया है।

(3) भक्तियोग–

जिस साधना में भक्ति की प्रधानता हो, उसे भक्तियोग कहा जाता है। भक्तियोग का वास्तविक स्वरूप गीता के बारहवें अध्याय के निम्नलिखित श्लोकों में समझाया गया है–

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।

अथैतदप्यसक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।

इन श्लोकों में परमयोगी श्रीकृष्ण ने भक्तियोग के द्वारा ईश्वर प्राप्ति के चार सरल उपाय बतलाये हैं और उनमें साधक को सर्वप्रथम यह आदेश दिया है कि वह अपना मन और बुद्धि ईश्वर में विलीन कर दे। ऐसा करने के उपरान्त वह ईश्वर में ही निवास करेगा। इसमें सन्देश नहीं है। मन और बुद्धि ईश्वर में लगाने का अर्थ है कि साधक स्वयं को सर्वतोभावेन ईश्वर के अर्पण कर दे। अपना पृथक् अस्तित्व ही अनुभव न करे।

यदि साधक ऐसा न कर सके तो उसके लिए दूसरा उपाय बताया है–

यदि तू मन को मेरे में लगाने में समर्थ नहीं है तो ध्यानाभ्यास, स्वाध्याय, सत्संग एवं संकीर्तन आदि साधनों द्वारा मुझ परमेश्वर को प्राप्त करने की इच्छा कर।

यदि तू पूर्वोक्त प्रकार से योगाभ्यास करने में भी अपने को असमर्थ समझता है तो स्वार्थ को त्यागकर तथा मुझ परमेश्वर को ही परम आश्रय, परमगति समझकर निष्काम प्रेम भाव से मनसा, वाचा, कर्मणा मेरे निमित्त ही यज्ञ, दान, तपादि कर्मों को कर।

यदि मनुष्य यह भी न कर सके तो उसके लिए भगवान ने चौथा उपाय बतलाया है कि वह समस्त कर्मों का फल त्याग दे। अर्थात् अपने द्वारा किये जाने वाले सभी शुभाशुभ कर्मों को ईश्वर के अर्पण कर दे।

9 वें अध्याय के 27 वें श्लोक में भी ऐसा ही निर्देश किया गया है–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

तू जो कुछ कर्म करता है, जो दान देता है, जो खाता है, जो पूजन–भजन करता है और जो तप करता है वह सब मेरे को अर्पण कर दे। ऐसा करने से तू कर्मबन्धन से मुक्त हो जायेगा और मुझे प्राप्त कर लेगा।

भक्ति की महिमा बताते हुए भगवान आगे कहते हैं कि यद्यपि मैं सब प्राणियों में समभाव से व्यापक हूँ, मेरे लिए प्रिय और अप्रिय कोई नहीं है फिर भी जो लोग भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं वे मुझमें वास करते हैं और मैं उनके अन्दर वास करता हूँ।

भक्तियोग को योगदर्शन में ईश्वर प्रणिधान कहा गया है तथा उसे अष्टांगयोग का एक महत्त्वपूर्ण अंग बतलाया गया है। गीता के अनुसार चाहे कोई ज्ञानी हो या कर्मयोगी हो अन्त में उसे भक्ति का आश्रय लेना पड़ता है।

ज्ञान की पराकाष्ठा एवं उसके फल बतलाते हुए गीता के 18वें अध्याय में कहा गया है–

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।

सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वत:।

ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।

ज्ञान की पराकाष्ठा के फलस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्न चित्त वाला योगी न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी प्रकार की कामना ही करता है तथा सब प्राणियों में समान भाव रखता हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है।

उस भक्ति के द्वारा मेरा वास्तविक स्वरूप जानकर तत्काल ही मुझ में लीन हो जाता है। फिर उसकी दृष्टि में मुझ वासुदेव के सिवा और कुछ रहता ही नहीं।

अर्जुन को अपना विराट रूप तथा चतुर्भुज रूप दिखाने के पश्चात् 11वें अध्याय के 53 वें और 54 वें श्लोकों में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि साधक अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरे इस रूप में दर्शन कर सकता है अन्य साधनों से नहीं। साथ ही 9वें अध्याय के 22 वें श्लोक में भगवान ने यह घोषणा की है कि भक्तजन अनन्यभाव से चिन्तन करते हुए मुझ परमेश्वर को निष्कामभाव से भजते हैं उनका योग और क्षेम मैं वहन करता हूँ। अर्थात् मैं उन्हें भगवत्प्राप्ति के निमित्त किये गये उनके योग–साधन की रक्षा भी मैं स्वयं करता हूँ। छटे अध्याय के 30 वें और 31 वें श्लोकों में जगदात्मा पुन: यह आश्वासन देते हैं–जो मुझे सर्वत्र देखता है और मुझमें सब कुछ देखता है उसके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता और मेरे लिए वह कभी नष्ट नहीं होता। अर्थात् मैं उनसे दूर नहीं रहता हूँ और वह मेरे से दूर नहीं रहता। तथा जो व्यक्ति एकीभाव में स्थित हुआ समस्त प्राणियों में आत्मरूप से व्याप्त मुझ सच्चिदानन्दघन परमेश्वर को भजता है, वह योगी सब प्रकार से व्यवहार करता हुआ भी मुझमें ही रमण करता है। क्योंकि उसके अनुभव में मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं। यही भक्ति की पराकाष्ठा है और यही योग की उच्चतम भूमिका तथा गीता का सार है।

जब प्रभुवर की करुणा होती

श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य'

जब प्रभुवर की करुणा होती,
मृत भी अमृत हो जाता है।
मधु बन जाता कालकूट भी,
दु:ख दैन्य सब खो जाता है।।

अपने अन्तराल की असीम गहराई से निकली, उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ मेरी अपनी अनुभूति का विषय है, जिसका प्रकाशन अब से पहले मैं इच्छा रखते हुए भी नहीं कर सका। शायद इसका कारण भी यही रहा कि जगत में मनुष्य की अपनी इच्छा नहीं किन्तु प्रभु इच्छा बलीयसी होकर ही उसे जीवन के ऊँचे नीचे मार्गों से ले चलने के लिए सदैव अग्रसर रहा करती है। इसी कारण से मनुष्य जब जो करना चाहता है नहीं कर पाता और जब जिसे नहीं करना चाहता है उसे करने के लिए सहसा विवश हो जाता है।

श्रद्धेय श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की अनुमति से जिस घटना का मैं यहाँ उल्लेख करने जा रहा हूँ वह अब से लगभग सवा वर्ष पुरानी है। 28 जून सन् 79 का दिन था, दोपहर के भोजन के बाद मैं जुलाई सन् 79 के सिद्धयोग के आवरण पृष्ठ की छपाई कराने में संलग्न था कि सहसा मुझे हल्की सी उदर–पीड़ा का अनुभव हुआ। अपानवायु की गति में कुछ प्रतिकूलता इस उदर पीड़ा का कारण हो सकती है यह सोचकर मैंने इसके निवारण और शमन के लिए आयुर्वेद के एक सुविख्यात योग 'अग्नि–तुण्डीवटी' की दो गोलियाँ जो मेरे पास रखी थीं जल के साथ सेवन कर लीं किन्तु इन गोलियों के सेवन का उस दिन कोई परिणाम नहीं निकला जबकि इससे पूर्व आवश्यकता पड़ने पर अपना अमोघ फल प्रदान किया करती थीं। पीड़ा शमन के लिए कुछ और भी उपचार किये गये किन्तु सभी व्यर्थ से प्रतीत हुए। दर्द के साथ–साथ बेचैनी और बेहोशी भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। बड़ी व्यग्रता की अवस्था में रात व्यतीत हुई। प्रात:काल होते ही एक प्रख्यात वैद्य को बुलाकर इस व्यगता की दशा की जाँच कराकर उनसे उपचार करने की प्रार्थना की गई। उन्होंने समुचित निरीक्षण–परीक्षण के पश्चात् अपनी अनुभूत औषधि देना प्रारम्भ किया। 29 और 30 जून को इन औषधियों का यथा विधि सेवन किया गया किन्तु उदर पीड़ा व बेचैनी के साथ

उत्तरोत्तर बढ़ने वाली बेहोशी में रंचमात्र भी अन्तर नहीं आया। उल्टा असर यह हुआ कि मूत्राशय और मलाशय और भी अधिक विकृत हो गया जिसके फलस्वरूप न मल का विसर्जन होता था न मूत्र का। तीसरे दिन अर्थात् एक जून को अवस्था यह हो गई कि वैद्य जी ने जो औषधि सेवन कराई वह पेट में पहुँच कर कुछ क्षण भी ठहर न पाई प्रत्युत वमन द्वारा तुरन्त बाहर आ गई। साथ ही ऐसा भी देखा गया कि दवा के साथ पेट से कुछ–कुछ खून भी वापिस आया है। एक बार नहीं किन्तु दो तीन बार थोड़े–थोड़े अन्तर से वैद्य जी ने कुछ परिवर्तन करते हुए औषधियाँ दीं फिर भी दशा यथावत् बनी रही, मल मूत्र विसर्जन की बात तो अलग रही–पल्टी के साथ पेट से खून का आना भी बन्द नहीं हुआ। वैद्य जी निराश होकर चले गये और मेरे एक पुत्र से जो मेरी बेहोशी और गिरती हुई अवस्था का तार पाकर मध्यप्रदेश से आ गया था, चुपचाप कह गये कि इनके पेट की एक पतली झिल्ली फट गई है जिससे यह खून आ रहा है। अब यह जब तक हैं तब तक इनकी जो बने सेवा कर लीजिये, जीवन अधिक चलेगा इसकी आशा नहीं है।

वैद्यजी के इस परामर्श और कथन के बाद और 2 जुलाई को मुझे दो प्रख्यात डॉक्टरों को बारी–बारी से बुला कर और दिखाया गया। उनमें से एक की चिकित्सा भी कराई गई किन्तु एक दिन और एक रात निर्देशित औषधि लेने पर भी जब कुछ भी लाभ नजर नहीं आया, किन्तु उत्तरोत्तर बेहोशी व व्यग्रता बढ़ती चली गई, तब 3 जून को नगर के एक प्रख्यात डॉक्टर को और बुलाया गया और उनके परामर्शानुसार मुझे अविलम्ब आगरा के सरोजनी नायडू मेडीकल कॉलेज के चिकित्सा विभाग में दाखिल कराया गया। मेरी अचेतनावस्था का पता इससे लग जाता है कि तारीख 3 जून को कौन डॉक्टर आये और मैं कब कैसे सरोजनी नायडू मैडीकल कॉलेज के चिकित्सा विभाग में पहुँचा, इसका कोई भी ज्ञान मुझे नहीं था। तीन दिन वहाँ रहने के बाद ही जब मुझे कुछ–कुछ चेतना आई तब मैं जान पाया कि मुझे घर से उठाकर इस चिकित्सालय में ले आया गया है। मैंने होश आने पर अपने शरीर को देखा तो मालूम हुआ कि कई स्थानों पर आँतों की नसें काटकर नलियों द्वारा मुझे आवश्यक औषधियाँ, ग्लूकोज आदि को सरलता के साथ पहुँचाने की व्यवस्था की गई है। मुँह द्वारा कोई भी औषधि मेरे पेट में पहुँचना सम्भव ही नहीं था। मुझे यह भी पता नहीं चला कि घर से चिकित्सालय में पहुँचाने के प्रयास में मेरे अपने पुत्र–पुत्रियों के अलावा जिन मेरे आत्मीय मित्रों और अन्तरंग साथियों ने सहयोग दिया उनमें नगर के प्रख्यात एडवोकेट श्री जयराम भारद्वाज, श्री प्रकाशनारायण शिरोमणि, श्री लोकेश श्रोत्रिय और क्षेत्रीय विधायक डॉक्टर कृष्णवीर सिंह कौशल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री जयराम भारद्वाज का आत्मीय सहयोग यों तो सदैव ही संकट की घड़ियों में मुझे सुलभ रहा

है। किन्तु इस प्राण घातक संकट में मुझे घर से मेडीकल कॉलेज के चिकित्सा विभाग में दाखिल कराने और लगभग डेढ़ माह तक अविराम चलने वाली यहाँ की चिकित्सा व्यवस्था में जिस मनोयोग और तल्लीनता के साथ नित्य नियमित रूप से अपना सक्रिय सहयोग दिया, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। यह भी एक शुभ संयोग रहा कि श्री जयराम भारद्वाज के सुपुत्र श्री सलिल भारद्वाज कॉलेज के इसी चिकित्सा विभाग में एक नवोदित डॉक्टर के रूप में सेवारत थे, इन्होंने तथा इनके अन्य सहयोगी डॉक्टरों ने सराहनीय संलग्नता और सहानुभूति के साथ मेरे उपचार के हेतु सभी सम्भव सुविधाओं की उपलब्धि कराई। सीनियर और जूनियर सभी डॉक्टरों की देख–रेख में मेरी चिकित्सा चलती रही किन्तु एक सप्ताह बीत जाने पर भी कोई भी चिकित्सा के 'यह अब संकट से बाहर है–ऐसी घोषणा करने की स्थिति में नहीं थे। सभी प्रकार के परीक्षण एक्स रे मशीन से लिए गये चित्रों के आधार पर तथा रक्त, मल, मूत्र आदि के रासायनिक विश्लेषण के आधार पर चल रहे थे। पूर्ण चेतना तो नहीं किन्तु अर्ध चेतना सी मुझे एक सप्ताह की चिकित्सा के बाद प्राप्त हुई। किन्तु कभी–कभी यह अर्द्ध चेतना भी चली जाती थी और मैं अपने को किसी शून्य अज्ञात अवस्था में पाता था। इसी बीच में गुरु–पूर्णिमा का पर्व आ पहुँचा। दो ही दिन पूर्व मुझे कुछ कुछ चेतना आई तब सहसा मेरे मुँह से पहले ये शब्द निकले–प्रभुजी नमो नमः प्रभुजी नमो नमः। इसके बाद ही मेरे ध्यान में आश्रम का सुन्दर सुहावना दृश्य आ उपस्थित हुआ। मन में सहसा गुरु पूर्णिमा को आश्रम पहुँचकर गुरु–पूजन की अभिलाषा जाग्रत हुई। मैंने अपने बच्चों से कहा अभी गुरु–पूर्णिमा के दो दिन शेष हैं मुझे तुम सब पूर्णिमा को आश्रम ले चलो, मैं अपनी अन्तिम बेला में गुरुवर के चरण स्पर्श की अभिलाषा रखता हूँ। मेरे बच्चों ने कहा हाँ–हाँ ले चलेंगे। मैंने हाँ–हाँ चलेंगे यह शब्द तो सुने किन्तु फिर मैं पूर्व–अर्द्ध चेतना की अवस्था में पहुँच गया। कई घण्टों के बाद चेतना आने पर मैंने अपने बड़े पुत्र से जो पास में था पुनः पूछा कि मुझे गुरु–पूर्णिमा पर आश्रम ले जाने की व्यवस्था कर सकोगे? उसने कहा डॉक्टरों ने उठने और चलने फिरने से इन्कार किया है आप चल फिर तो क्या उठ बैठ भी नहीं सकते हैं तब वहाँ पहुँचने का प्रश्न ही नहीं है।

इस बच्चे ने यह भी बताया कि मैं इस बीच में आश्रम हो आया हूँ और उनसे आपका प्रणाम निवेदन करने के साथ आपकी इस अवस्था और दशा का भी निवेदन कर आया हूँ और यह भी प्रार्थना कर आया हूँ कि पिताजी आपके श्री चरण स्पर्शन, दर्शन और कृपाप्रसाद पाने की उत्कट उत्कण्ठा रखते हैं। श्री गुरुदेव जी ने कहा है कि वे शीघ्र ही यहाँ चिकित्सालय में आ रहे हैं। श्री गुरुदेव जी के शुभ दर्शनों की प्रतीक्षा में वह रात व्यतीत हुई। इसी बीच मेरा एक मझला पुत्र भी आश्रम पर पहुँचकर गुरुदेव जी को चिकित्सालय के कमरे व वार्ड

का पता तथा पलंग का नम्बर भी जाकर दे आया। श्री गुरुदेव जी ने इससे कहा कि तुम चलो हम भी तुरन्त ही वहाँ पहुँच रहे है।

गुरु पूर्णिमा से ठीक एक दिन पहले ही श्री गुरुदेव जी को मेरी दारुण आकस्मिक बीमारी का परिचय मिला था, गुरुपूजन के लिए आये हुए सहस्त्रश: शिष्यों के ठहरने-ठहराने की उचित व्यवस्था में वे व्यस्त थे। इसके अतिरिक्त भी वे अन्य व्यस्तताओं से घिरे हुए थे किन्तु उन्होंने इन सभी व्यस्तताओं को एक ओर छोड़कर अस्पताल में पहुँचकर मुझे कृपा प्रसाद और चरण स्पर्शन का अवसर देने के कार्य को प्रमुखता दी। अपने प्रिय शिष्य श्री भुवनेन्द्र झा को जो आश्रम में मौजूद थे एक कार ले आने का आदेश दिया। श्री झा कार कहाँ से लायें-ढूंढला जाया जाये या कहीं अन्यत्र से लाई जाय, इस ऊहा-पोह में कुछ दिग्भ्रम से हो रहे थे कि श्री गुरुदेव जी ने कुछ ध्यानस्थ होने के बाद कहा 'चिन्ता मत करो कोई गाड़ी अभी यहाँ आ रही है उसी से चलेंगे।' श्री झा ने दूर-दूर तक नजर दौड़ाकर देखा लेकिन सड़क पर कोई गाड़ी नजर नहीं पड़ रही थी किन्तु श्री झा तथा कुछ अन्य साथी यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि कुछ मिनट बाद ही एक मेटाडोर कार आई और आश्रम के मुख्य द्वार पर आकर खड़ी हो गई। उसी मेटाडोर से उन्होंने आगरा के सरोजनी नायडू अस्पताल चलने और वहाँ से फिर आश्रम लौटकर आने का निश्चय करके उसमें विराजमान हो गये। सभी आश्रमवासी और गुरु-भाई बहन जो वहाँ पूजनार्थ आये थे बड़े आश्चर्य और उत्सुकता से देख रहे थे कि श्री गुरुदेव जी गुरु-पूर्णिमा के लिए की जा रही व्यवस्था आदि को छोड़कर कहाँ क्यों जा रहे हैं। क्योंकि उनमें से अधिकांश को मेरे रोगग्रस्त होने का कोई पता नहीं था।

श्री गुरुदेव जी के साथ श्री भुवनेन्द्र झा और श्री आचार्य चन्द्रहास शर्मा भी जो गुरुपूजन के हेतु आश्रम आये हुए थे, मोटर में गुरुदेव जी की अनुमति से बैठ गये। निर्धारित दूरी तय करती हुई कुछ ही देर में मेटाडोर गुरुदेव जी को लेकर आगरा आ पहुँची, मेटाडोर से उतरकर श्री गुरुदेव जी ने कॉलेज के चिकित्सालय की दूसरी मंजिल पर चढ़ने के लिए जैसे ही पैर रखा वैसे ही मेरे कुछ युवा वकील मित्रों ने जो मुझे देख कर लौट रहे थे उनमें से कुछ ने जो आश्रम हो आये थे और श्री गुरुदेव जी को पहचानते थे गुरुजी को प्रणाम करके कहा कि श्री महाराज जी आपको तो दिव्य जी प्रातः से ही स्मरण कर रहे हैं बार-बार आपको याद करते हैं। श्री गुरुदेव जी ने कहा-हाँ मुझे पता है। तुरन्त वे मेरे समीप पलंग के निकट पहुँच गये। मैं अर्द्ध-चेतना में था। श्री गुरुदेव जी की आशीर्वादात्मक वाणी मेरे कानों में पड़ रही थी, कृपाप्रसाद के रूप में।

एषणाएँ और उनका रूप

श्री ब्रह्मचारी जगन्नाथ

उपनिषद्–कार ऋषि 'विकृतकामनाओं' को 'अनृतपिधाना' कहते हैं; आइये इस पर विचार करें। शरीर–त्रयधारी मानव की आवश्यकतायें मुख्य रूपेण तीन प्रकार की होती हैं; किन्तु पशुओं तथा जन–साधारण की अपेक्षा एक प्रबुद्ध मानव की आवश्यकतायें कुछ अधिक हैं क्योंकि बुद्धि–प्रधान क्रतु: कर्मशील मानव को भोग सामग्री का अधिकांश 'भाग स्वश्रम' से जुटाना पड़ता है तथा मोक्ष प्राप्ति के निमित्त भी कुछ करना होता है; परन्तु मानवेतर योग प्रधान योनियों के जीव कारावासियों के समान हैं, उनकी समस्त भोग सामग्री का प्रबन्ध विधाता की ओर से प्रकृति ही करती–कराती है। 'स्थूल–शरीर' सम्बन्धी आवश्यकतायें 'भोजन वस्त्र–निवास और जीवार्य' तो मानव तथा अन्य प्राणियों की समान ही हैं किन्तु मननशील मानव को विज्ञान प्रधान अपने 'सूक्ष्म–शरीर' के लिए विज्ञानार्जन करना एवं 'कारण शरीर' वासी 'देही जीवात्मा' के आहारार्थ आनन्द को उपार्जित करना भी आवश्यक होता है। उक्त तीनों शरीर अपने–अपने आहार को पाकर ही जीवित तथा भोग मोक्ष के साधक बने रह सकते हैं। जन्मते ही मानव को जिन वस्तुओं की तुरन्त आवश्यकता प्रतीत होने लगती है उनमें सर्वप्रथम है 'क्षुधा तृषा की निवृत्ति' के लिए आहार की, पुन: शीतोष्ण की निवृत्ति के लिए वस्त्रों की तथा स्थाई रूप से सिर छिपाने (निवास) के लिए एक गृह की भी, नव यौवन प्राप्ति तक ये समस्त आवश्यकतायें माता–पिता पूर्ण करते रहते हैं। परन्तु स्नातकोत्तर किसी युवक के मन में उक्त आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए एक प्रबल किन्तु स्वाभाविक कामना उपजती है कि—मैं वित्तोपार्जन करूँ; क्योंकि वित्त से जहाँ शारीरिक आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं वहाँ यज्ञ, दान आदि 'धर्म' 'काम' की सिद्धि भी होती है। धर्म–सम्पुट–श्रम के द्वारा उपार्जित अर्थ से एक सन्तोषी का जीवन–निर्वाह सम्मानपूर्वक हो जाता है। अत: वित्त की कामना 'अभद्र कामना' नहीं कही जा सकती है और न इसे एषणा की ही संज्ञा दी जा सकती है और न इसे पाप अधर्म अपराध माना जा सकता है। जीवन यात्रा सम्पन्न करने के लिए आवश्यकता रूप कामनाएँ तो यथार्थ सत्य–कामनायें 'त इमे सत्याः कामाः अनृतपिधानास्तेषां सत्यानां सतामनृतपिधानम्' हैं। शुभ कामना के अपूर्ण रहने का एकमात्र कारण होता है मानव की अभीप्सा पर 'अनृत–स्वार्थमय अहंजनित' कठोर आवरण का आ पड़ना, इस क्लिष्ट आवरण के आ पड़ने पर शुभ कामनाएँ इस भाँति ही फल–फूल नहीं पाती जैसे किसी शिलाखण्ड के आ पड़ने से वृक्ष–वल्ली–गुल्म आदि के मृदुल बीज अंकुरित नहीं हो पाते। शारीरिक अन्य आवश्यकताओं के साथ किसी भी युवक को एक अन्य आवश्यकता भी अनुभव होती है वह है उसकी उद्दाम काम–पीड़ा को

समय–समय पर शमन करने वाली 'नारी' को, 'नारीयंत्र' की प्राप्ति भी वित्त से ही सम्भव होती है। इसके संग से अनेक दुष्पूर कामनाओं की उत्पत्ति उत्तरोत्तर होती चली जाती है–जो मरण काल तक पूर्ण होने का नाम ही नहीं लेती, संग–दोष से उत्पन्न हुई ये तथा ऐसी ही अन्यान्य कामनाएँ जो जीवन में पूर्ण नहीं हो पातीं–जिन्हें वेद ने 'जुहुराण येनः' की संज्ञा दी है, ये सभी आवागमन के चक्र में मनुष्य को घुमाती रहती हैं। आवागमन से बचने तथा वित्त और जाया हीन व्यक्ति को इनके बिना भी अपनी पूर्णता की ओर ध्यान दिलाने के लिए 'पाङ्क्त यज्ञ, का बृहदराण्यक उपनिषद् में वर्णन किया गया है।

अनृतपिधाना कामनाएँ–

'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति' की उक्ति के अनुसार मनुष्य की यथार्थ आवश्यकताएँ तथा मंगल कामनाएँ भी 'विलासिता' तथा रूप–रस–गन्धादि पाँचों विषयों के संसर्ग से धूमिल गदली बनी और काम–क्रोध–लोभादि विकारों द्वारा प्रताड़ित भोग–बुभुक्षित बनकर 'अनृतपि–धाना' बन जाती है–(उक्त अनृतमय कठोर आवरणों में दबकर सत्य कामनायें भी पूर्ण नहीं होतीं, फूलती फलती नहीं) ये कुत्सित कामनायें 'आशा–तृष्णा' की झंझावात का प्रश्रय पाकर दुष्पूर 'एषणा' का कराल रूप धारण कर लेती हैं, उद्‌ग्रीव सदा बुभुक्षित, अहम्' को उज्जीवित रखने वाली 'एषणा–मात्र' के परित्याग का विधान समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से मिलता है–यह उपदेश–आदेश या आज्ञा मनुस्मृति आदि धर्म–शास्त्रों तथा उपनिषदादि अध्यात्म ग्रन्थों में स्पष्ट रूप में पाई जाती है। लोक प्रसिद्ध 'वित्तैषणा पुत्रैषणा लोकैषणा' पूर्वोक्त वित्तजाया आदि की आवश्यकताओं तथा विकृत–अहं का घृणित रूप हैं। वित्तैषणा है–धन–धान्यादि की प्रवृद्धतृष्णा, पुत्रैषणा है–कामुकता जो जाया और पुत्र–पुत्रियों को पाकर भी शान्त नहीं होती। लोकैषणा है–दुष्पूर यश की बुभुक्षा, इनमें से कोई किसी से हीन वा हेटी नहीं, सभी समान रूप से 'आत्मघाती' हैं। जब किसी विषय की लालसा अत्युग्र होकर अदम्य हो उठती है। तब इसे विषय–विकार कहते हैं और जब यह विकार खाने को दौड़ता है तब इसके मूर्तरूप का नाम एषणा को जाता है। ये विकार सभी को मर्माहत करते रहते हैं। कोई विरला तापस यति सन्तोष–धन पाकर धन–धान्य की कामना से निवृत्त होकर निरीह सा बन जाता है। कोई अपनी उग्र साधना या वैराग्य के कारण आंशिक रूप में पुत्र–पुत्रियों की कामना पर कुछ अधिकार पा जाता है, किन्तु यश का परित्याग कर देना अमानुषिक साहसी कार्य है। मृत्यु तिमीषिका के समान ही लोकैषणा का मद–मोह भी मूढ़ से लेकर विद्वान तक ही सीमित नहीं दीखता, यह तो पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों तक में अपने उग्र रूप में दीख पड़ रहा है। यह ठीक है कि विद्वान मूढ़–पशु–पक्षी आदि अपनी–अपनी योग्यता और बलाबल के अनुसार देश–जाति–कुटुम्ब–संघ में मूर्धन्य वा यशस्वी एवं वरिष्ठ बनने का प्रयास करते हैं और सभी सीमाओं को लाँघना सर्वपूजित बनने के लिए संघर्ष ही नहीं करते वरन तुमुल महायुद्धों के द्वारा रक्त की नदियाँ बहते सुने तथा वर्तमान में भी देखे

जाते हैं। प्रायः ऐसा क्यों करते हैं ये? क्योंकि वरिष्ठ बनकर सर्वपूजित होकर भोग विलास की मनमानी छूट मिल जाती है। यह लालसा तृष्णा–बुभुक्षा देवों तक में अत्युग्ररूप से विद्यमान देखी सुनी जाती है। देवाधिपति इन्द्र को किसी का उत्कर्ष सहन नहीं होता, वह अहर्निश सदा दूसरों का तप भंग करने–कराने में लगा रहता है। जिससे इन्द्रासन पर सदा उसी का अधिकार जमा रहे–ऐसा लेख पुराणों में देखा गया है।

अब तीनों एषणाओं में से 'लोकैषणा' अहं का आहार होने से विशेष महत्त्व रखती है। क्योंकि 'अहं' का प्रिय आहार 'मान–पूजा प्रतिष्ठा आदि ही है, सर्वपूजित और मूर्धन्य बने रहने की लालसा–तृष्णा–अतिप्रबल दुर्निग्रही–अविजित–तथा अपराजेय भी है। लोकैषणा उक्त दोनों से विलक्षण है। यह अहं भी कल्पित अज्ञान जनित उपज है; आवश्यकता पूर्ति पर 'कामना' शान्त तथा निवृत्त भी हो जाती है किन्तु एषणा वह दुष्पूर बुभुक्षा है। जो तृप्ति का कभी नाम ही नहीं लेती तृप्त होना जानती ही नहीं। यह पापाचार में ढकेल कर, अपराधी बनाकर, मानव को कष्टों की दल–दल में फँसा देने वाली एक मारक विभीषिका (बला) है. 'एषणा मात्र' ज्ञान और शक्ति की भक्षक मानव को अशक्त पंगु बना देने वाली आवागमन–चक्र में डाल कर पीस देने वाली एक क्रूर चक्की है। जहाँ–जहाँ यह है वहाँ–वहाँ दुःख है। यत्र–यत्र एषणा तत्र–तत्र तापम्' व्याप्ति भी प्रयुक्त हो सकती है। 'सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः' योग–2–42 सूत्र कथित अवस्था से सर्वथा विपरीत है यह कामना का निकृष्ट–हेयरूप है 'ऐषणा', यह निश्चय कर लेना चाहिए।

विषयों का विकारों से सम्बन्ध–

ग्रन्थों में यत्र–तत्र ऐसा लेख मिलता है कि ये काम–क्रोध–लोभादि विकार, रूप–रसादि विषयों के विकृत रूप हैं। कहीं–कहीं काम–क्रोधादि को मानसिक–विकार कहा है, वस्तुतः तो समस्त दूषण, अभद्रता आदि मन के ही विकार हैं, पुनः विशेष रूप से कामादि को ही मानसिक विकार क्यों कहा गया है? प्रथम यह और दूसरी शंका यह उत्पन्न होती है कि–रूप–रसादि से ये कामादि विकार प्रकट कैसे होते हैं? विचार में तनिक गहरा बैठने पर ऐसा कुछ ज्ञात होता है कि जैसे जगत के समस्त भाव–रस तथा पदार्थों के मूल कारण त्रिगुण हैं एवमेव ये शब्द–रस स्पर्शादि भी त्रिगुणों के ही तो कार्य हैं। अतः त्रिगुणों की न्यूनाधिकता से प्रभावित होकर ये सगुण और निर्गुण अथवा विकार बन जाते हैं। जैसे सत्व प्रधान अवस्था में तो ये शब्दादि ज्ञान के प्रकाशक होते हैं। रजः प्रधान होकर ये विषाद के उत्पादक 'कामादि विकार' बन जाते हैं और पुनः तमस् के आमिश्रण से ये विकार 'एषणाओं' का रूप धारण कर लेते हैं। यह तो हुआ कामादि विकारों के साथ पाँचों विषयों का साधारण सम्बन्ध।

अन्दर के पट खोल रे!

श्री शान्तिस्वरूप कपूर

गंगाराम बड़ा मंगल रहा अपने बचपन में, सब दोस्त इसके साधन थे, ऐश मौज की जवानी मस्तानी आई, गंगो सुन्दर जनानी आई, पहले आटा-दाल की चिन्ता पिताजी को थी, माताजी को थी। अब गंगाराम वह बोझ उठाने लायक तगड़ा हो गया था, रोटी-रोजी के खेत में पुरुषार्थ का हल चला लेता था। गंगो बाहर से सुन्दर और स्वच्छ भी थी, अन्दर से सुघड़ थी, स्यानी थी, मेहनत करके जो गंगू लाला गंगो उसे सावधानी से खर्च करती, कुछ बचाती कुछ खिलाती। जीवन का बसन्त नये-नये अरमानों से फूल खिलाता, सौभाग्यवान् था यह चकवा-चकवी का जोड़ा "एक ने कही दूजे ने मानी, नानक दोनों महाज्ञानी" जहाँ रगड़ा नहीं, वहाँ झगड़ा कैसे? गृहस्थ के जुए के नीचे दोनों गरदन डाले, शुभ कर्मों का हल चला कर आगे आने वाले कल के लिए आनन्द बीज रहे थे। जो बीजेंगे सो काटेंगे।

गृहस्थ की बेल पर एक सोहनू एक मोहनू के साथ एक भोली के मीठे फल गये। गंगा और गंगी चारों पहर इनकी चौकीदारी करते रहे, कहीं बुरी संगत का कोई कौवा इनको खराब न कर दे, कहीं इनकी गन्ध दुर्गन्ध न हो जाये, कहीं इनकी पुष्टि में रुकावट न आए, कहीं इनके वर्धन में कसर न रह जाये, दिन-रात की मेहनत सफल हो गई, फल तैयार हो गये, सामर्थ्य के अनुसार शादियाँ कर दीं, दूसरे गमलों में आरोप दिए, आप कमाएँ आप खाएँ। धीरे-धीरे जीवन की दोपहर बीत गई, शाम आने लगी, इधर से कुछ फुरसत पाई, जोड़ी निकली यात्रा पर पहाड़ों के नजारे-झरने बर्फ से लदी चोटियाँ, कहीं लाल-लाल सेब, कहीं लाल मुख की खुमानी, कहीं रसभरी नाशपाती, कहीं अखरोट, बादाम, शुद्ध शहद, खुशबूदार कालाजीरा, महकाने वाला केसर। एक ही धरती, एक ही पानी, एक ही हवा, पर लीला सब न्यारी-न्यारी-

नजारे बहुत थे पर नजर छोटी थी।
सीख बहुत थी पर अकल मोटी थी।।

पहले तो-

"फिकरे रोजी में, मदहोश थे इतने।
कि फिकरे रोजी तो थी,
राजक का कुछ ख्याल ना था।"

अब इन नजारों की मस्ती ने इतना मदहोश कर दिया कि, इनके बनाने वाले का ध्यान ही नहीं आया, पहाड़ से उतरे हरिद्वार आये, मथुरा घूमे, इलाहाबाद संगम पर सैर की, बनारस के घाटों पर मीरा दिवानी के गीत सुने। विश्वनाथ के संगमरमर के मन्दिर में उछल–उछल कर घण्टे बजाये। काली के मन्दिर कलकत्ते आये, छोटे–छोटे बकरी के बच्चे काली के नाम पर कटते देख खूब घबड़ाये, वह गंगा जो गंगोत्री में कितनी स्वच्छ ठण्डी, पावन थी यहाँ आते–आते रास्ते के कुसंग से कितनी मैली, कितनी धीमी, कितनी थक गई थी, और बेबस होकर खारे समुद्र में लीन हो गई, अब यह गंगा नहीं थी, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी भी नहीं थी, अब यह मात्र खारी समुद्र की लहर थी। प्रभु की कृपा हो गई, बुद्धि इन नजारों में खो गई। एक जिज्ञासा की दीपशिखा जाग उठी, काली कमली वाले के क्षेत्र में सवेरे–सवेरे मीठे स्वर गूँज रहे थे।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा, अमृतं गमय।

झूठ से सत्य की ओर, अन्धेरे से रोशनी की ओर, और मौत से मोक्ष की ओर चलो रे राही! यही आखिरी पड़ाव है, यही आखिरी पुरुषार्थ है, यही आखिरी लक्ष्य है। गंगा का किनारा, योगियों की साधना से सुरभित वातावरण और जीवन की सन्ध्या–बेला, सबने जीवन के चिन्तन की नैया का रुख बदल दिया, जिज्ञासा जाग उठी, अन्दर वाला बोल उठा–

कुछ देर फिकरे आलमे बाला की छोड़ दे।
इस अंजुमन का राज इसी अंजुमन में है।।

ओ भोले गंगाराम! ओ प्यारी गंगो! अब कुछ समय के लिए बाहर की मौज–मस्ती छोड़ दे, चौटी वाले का हलवा–पूड़ी भूल जा। दिल्ली के दरीबे की जलेबी बहुत खा ली, कुलफी और चाट भी चबा ली बाहर बहुत घूम लिया, अब कुछ अन्दर की सुध ले, इस यात्रा का राज अन्दर है बाहर नहीं। ओ भूले मुसाफिर! यह कब तक चलेगा।

''अन्दर पण कुड़ला, बाहर वंशी वाले नाल गला'' तू पहलगाँव गया था, तूने लाल सेब, खुमानी, बादाम बग्गुगोशा खाया, एक क्षण के लिए रसना तृप्त तो हो गई। पर यह सुख क्षण से अधिक टिका नहीं, यदि तू तब भी समझ लेता कि सेब की लाली बाहर से नहीं, अन्दर से आई है, मिठास जलेबी की तरह बाहर की चासनी से नहीं, खुमानी के अन्दर से आई है तो तेरा बेड़ा पार हो जाता। तू तब भी जाग न सका, तू ने चलती गंगा–यमुना, कावेरी को देखकर भी न समझा कि चलने की गति जड़ जल के कलरों में नहीं थी, कोई अटल नियम इनको भगा रहा था, तू नियन्ता की खोज करने की ओर चल पड़ता तो भी कुछ और

आगे आ जाता, तूने कितनी ही प्रभात वेला देखी। सूरज को उदय होते देखा, दोपहर की तीव्र तपिश देखी, शाम को अस्त होते देखा। तूने सुना ही नहीं

डूबते सूरज को वक्ते शाम देख।
हुस्न वाले, हुस्न का अंजाम देख।।

तुमने सूरज से पूछा ही नहीं तेरे को यह रोशनी, यह गर्मी, यह आकर्षण कहाँ से मिला, तूने चाँद देखा, चाँदनी देखी, उसकी चाँदनी में ठण्डक देखी, समुद्र को पूर्णमासी के दिन चाँद की ओर उछलते देखा पर पूछा नहीं यह सब भण्डार उसे किस अन्दर वाले ने दिया, कबीर गाता रहा–

सुबहान तेरी कुदरत पे कुरबान।
पानी ऊपर चादर बिछाई;
तम्बू ताना आसमान।
चाँद सूरज बने मशालची,
चमके सकल जहान।।
जो कोई यहाँ नाचन
आया बूढ़ा ना जवान।
पाँच तत्त्व का पिंजरा बनाया,
फूँके इस में प्राण।।
आँखें देखें कान सुने रे,
बोली बोले जबान।
हथ्थी लेवे हथ्थी देवे,
पाँव नापें जहान।।
पिंजरे अन्दर मैना बैठी,
गावे उसके गुन गान।
भर के पेट सुलाता सबको,
भूखा जगे जहान।।
जरे जरे में रहा समाया,
परम दयाल भगवान्।
कहे कबीर सुनो भाई सन्तो,
साहिब को पहचान।।

तो जीवन के मोक्षपथ के यात्री कबीर ने तुझे जगाया था जागा नहीं, संसार के विषयों से भगाया था तू भागा नहीं ओ बावरे!

दिल के अन्दर ही खुदा था,
तुझे मालूम न था।
मुश्क नाफे में छिपा था,
तुझे मालूम न था।
हश्र क्या उस मरीज का होगा।
जहर को जो दवा समझता है।।

मेरे प्यारे, घबड़ा नहीं!
देख तू वक्त की दहलीज से,
टकरा के नां गिर।
रास्ते बन्द नहीं सोचने,
वाले के लिये।।

उसके दरबार में जब जाओ तभी सवेरा है। "जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है"। तू भी अब बाहर के पट बन्द करके अन्दर के पट खोल, तुम्हें पिया मिलेंगे जरूर।

वह तेरे अन्दर, तेरे बाहर, तेरे पास, तेरे से दूर, सब जगह पर हर क्षण जागता हुआ तेरी रक्षा करता है, तुझे बुलाता है, उसकी गोद हर समय तेरे लिए खाली है, वह सच्चा शिव है सबका कल्याण करने वाला तेरे हृदय के मन्दिर में है, वह कल्याण का भण्डार है, उसके चिन्तन से, मनन से तेरे सब इरादे, मनसूबे हमेशा कल्याणकारी हो जायेंगे सुन उसके वेद की वाणी को सुन।

गीता दर्शन

गीता के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है जिसमें कहा गया है कि सब उपनिषदें गौओं की तरह है, और गीता अमृत रूपी दूध है, और दुहने वाले स्वयं श्रीकृष्ण भगवान हैं। एक विद्वान का कहना है कि यदि भारत का समस्त साहित्य नष्ट हो गया होता और केवल गीता ही रह गई होती तो भी संसार को आर्य जाति के गौरव की याद दिलाने के लिए वह पर्याप्त थी। गीता भारतीय संस्कृति का प्रतीक है।

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा)

योगाचार्य श्री तपोनिधि जी का दिव्य आश्रम है। आश्रम में प्रवेश करते ही मालूम पड़ता है यह दिव्य देवलोक बैकुण्ठ है। चारों ओर पक्षी कलरव कर रहे हैं। वर्षा ऋतु शांत हो चुकी है। शनैः शनैः शरद ऋतु ने अपना प्रवेश आरम्भ कर दिया है। वृक्षों पर नितान्त हरियाली है। कदली वन के हरे–हरे सुमनोहर पत्ते अपनी अनुपम शोभा दिखा रहे हैं। कहीं–कहीं पर झुकी हुई कदलियाँ यह सूचना दे रही है कि ये सुन्दर मधुर फल वाली हैं। दर्शकगण बढ़कर देखते है तो झुकी हुई कदलियाँ सभी फलवती हैं। उनके ऊपर सुमधुर और सुन्दर फल सुशोभित हो रहे है और उन फलों के भार से कदलियों का झुक जाना उनकी स्वाभाविकता को दिखला रहा है। चतुर्मास के बाद मालूम पड़ता है वृक्षों की सघनता ने कुंज वन तैयार कर दिये हैं। अशोक के वृक्ष फले–फूले बिल्कुल अशोकता का परिचय दे रहे हैं। हार शृंगार के पवित्र पुष्प चारों ओर फैल–फैल करके अपनी सुगन्ध से आश्रम की अनुपम शोभा बढ़ा रहे हैं। कदम वृक्षों की सघन पत्रावली ने स्वाभाविक रूप से दिव्य कुंज निकुंजों के भवन से तैयार कर दिये हैं जिनकी छत्रछाया में आश्रमवासी ब्रह्मचारीगण अपने–अपने ध्यानाभ्यास में लगे हैं। आसन क्लासें चल रही हैं। कहीं–कहीं टाटाम्बरधारी, लम्बी–लम्बी जटाओं वाले महात्माओं के दर्शन हो रहे हैं। शनैः शनैः दर्शकगणों की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वे लोग अपने गुरुदेव के दर्शनों की अभिलाषा में बैठे हुए संकीर्तन कर रहे हैं और गा रहे हैं–

हम कब से आये हैं योगेश्वर तेरे द्वारे,
तेरे दरशकी है अभिलाषा बैठे आस लगाये।
जीवन ज्योति जगादो प्रभुजी तेरी शरण में आये,
सुना है कितने पापी की तू नैया पार लगाये।
मांग रहे हैं हे योगेश्वर दोनों कर फैलाये।।
हम कब से .... (1)

तेरे पद की रजको सिर पर बारम्बार चढ़ायें,
हे लोकेश्वर, अखिलेश्वर खाली हाथ न जायें।

दिल में जो अरमान भरे हैं योगिराज हम पायें,
सिद्धों के सरताज प्रभु हम तेरे ही गुण गायें।।

हम कबसे .... (2)

परमपिता परमेश्वर प्रभु हमरी नैया पार लगाओ,
तेरी छटा निराली प्रभुजी आके दरश दिखाओ।
हम अनाथों को हे सिद्धेश्वर अपने दास बनाओ,
दासकृपा भटकट है दर-दर उर में जोत जलाओ।।

हम कबसे .... (3)

धीरे-धीरे सत्संगियों का समूह चारों ओर से आश्रम में भर उठा। श्री योगाचार्य जी की जय, श्री सद्गुरुदेव जी की जय की ध्वनियों से आकाश तल निनादित हो उठा। अपने भक्तों की भीड़ को देखकर व उनकी संकीर्तन ध्वनियों को सुनकर श्री योगाचार्य जी अपनी पर्णकुटी से बाहर आये व सत्संग मंच पर आसनासीन होकर उन्होंने अपना उपदेश आरम्भ किया। अपने आसन पर बैठे हुए श्री योगाचार्य जी तेजपूर्ण और कितने सुन्दर दिखाई दे रहे थे जिसकी कुछ कल्पना नहीं की जा सकती, मालूम पड़ता था देवसभा से स्वयं बृहस्पति विराजमान हों। योगाचार्य जी ने अपना उपदेश आरम्भ किया। उन्होंने कहा भाई! तुम लोगों की पवित्र योग-जिज्ञासा को देखकर मेरा मन बहुत ही आह्लादित हो रहा है मालूम पड़ता है कि तुम्हारी योग-जिज्ञासा बिल्कुल सच्ची है और तुम योग-सिद्धान्तों को पूरी तरह अपने हृदय में अपना लेना चाहते हो ठीक है। यही कल्याण का आदि स्रोत है। जिसको प्राप्त करने पर ऋषि मुनि तपस्वी सभी कृतार्थ हो गये एवं संसार के बन्धनों को काट कर परम परमार्थ को प्राप्त किया। जिज्ञासु मनुष्य इस विद्या को ही प्राप्त करके परम श्रेय भागी बन जाया करता है और उसका दर्जा तथा स्थान विभिन्न प्रकार की साधना करने वाले साधकों से उत्कृष्ट से हुआ करता है। गीता में स्वयं श्री भगवान कृष्ण ने इस बात को स्वीकार किया है कि योग ही सर्वोत्कृष्ट विद्या है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से निम्नांकित श्लोकों में योग की उत्कृष्टता बतलाई है-

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात् हे अर्जुन योगी का स्थान तपस्वियों से, ज्ञानियों से एवं कर्मकाण्डियों से सभी

से ऊँचा है इसलिए तुम योगी बनो। क्योंकि—

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव

दानेषुयत् पुण्यफलां प्रदिष्टम्।

अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा

योगी परमस्थानमुपैति चाद्यम्।।

अर्थात् वेद में, यज्ञ में, दान में, तप में जो भी पुण्य फल कहा गया है योगी उस सबका उल्लंघन करके आदि परम स्थान को प्राप्त हुआ करता है इसलिए तुम सबको योग विद्या की ही शरण लेनी चाहिए। क्योंकि भगवान शिव का भी आदेश इसी प्रकार का है—

ज्ञानरक्तो विरक्तो वा

धर्मज्ञोपि विजितेन्द्रियः।

विना योगेन देवोऽपि

न मोक्षं लभेत द्विषे।।

अर्थात् चाहे कोई ज्ञानी हो या विरक्त हो धर्मात्मा हो या विजितेन्द्रिय हो बिना योग के मुक्ति को प्राप्त नहीं होता। श्री योगाचार्य जी के इस पवित्र योग—उपदेश को सुनकर धर्मदत्त नाम के एक योग—जिज्ञासु ने खड़े होकर **प्रश्न** किया—हे गुरुदेव! जो लोग अन्यान्य उपासनायें करते रहते हैं या ब्रह्मवाद का मनन करते रहते हैं वे लोग तो योगी नहीं होते क्या उनकी उपासनायें व्यर्थ हो जाती हैं या कुछ फल मिलता है? कृपा करके यह बात मुझे समझाइये। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि उनका पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता हो।

उत्तर—नहीं, नहीं पुत्र ऐसी बात नहीं है वे लोग शनैः शनैः अपनी—अपनी उपासनायें करते हुए योग मार्ग की ओर बढ़ जाया करते हैं। योग—शिखोपनिषद् में भगवान शंकर ने इस बात का भी निर्णय स्पष्ट शब्दों में दे दिया है—

कि. इदृशन्तु भवेत् दद् यद् तत् तत् भुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत पश्चात् पुण्येन लभ्यते सिद्धेन सह सगति ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा ततो नस्यति संसारोयं नान्यथा शिव भाषितम्।

अर्थात् अन्यान्य उपासनाओं तथा वेदान्त धारणाओं में प्रयत्न करता हुआ साधक अपने पुण्य को बढ़ाता रहता है जब उसके पुण्य का खजाना परिपूर्ण हो जाता है तब उसको उस पुण्य के फलस्वरूप पूर्ण सिद्धयोगी गुरु की संगति प्राप्त होती है और वह योगी बन जाता है। तभी उसका संसार चक्र नष्ट हो जाता है। इसलिए 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार साधक अपनी—अपनी मति के अनुसार विभिन्न मार्गों से प्रयत्न तो करते रहते हैं किन्तु

निःश्रेयस सिद्धि तो केवल मात्र योग से ही कर पाते हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव हम सभी का पूर्णरूपेण भला हो जाये इसलिए इस कल्याणकारिणी, पवित्र योग–विद्या का जो आपने पहले उपदेश किया था उसे विस्तार से समझाने की कृपा कीजिये?

उत्तर—हे पुत्र! हमने पिछली बार तुम्हें वितर्कानुगत और विचारानुगत योग के बारे में समझाने का प्रयत्न किया था। विचारानुगत योग की निर्विचार समाधि की स्थिति में योगी सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। तथा—

प्रज्ञा प्रसादमारुह्या
शोच्यः शोचतो जनान।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः
सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् इस स्थिति में योगी सब चिन्ताओं से रहित होकर सांसारिक प्रवाह में बहते हुए प्राणियों को इस प्रकार देखता है जिस प्रकार पहाड़ पर खड़े होकर मनुष्य जमीन वालों को देखता है इस स्थिति में समाधिस्थ योगी को—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञाः।

ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है उस समय योगी जो कुछ देखता है सत्य देखता है। इस बुद्धि का विषय श्रुत और अनुमान से बहुत आगे का होता है इसके संस्कार अन्य संस्कारों को रोक देते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि के आमोद–प्रमोद आल्हादादि विषयों में ज्यों ही योगी संयम करता है त्यों ही अपने आपको आनन्दमय देखने लगता है यही सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी स्थिति आनन्दानुगत की है। इसी प्रकार पुरुष की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन शक्ति जब एक रूप में भाषित होती हैं और उसमें योगी संयम करता है तब वह अस्मितानुगत योग को प्राप्त होता है। इस अस्मितानुगत योग में पुरुष की दृग शक्ति और बुद्धि की दर्शन–शक्ति क्योंकि एकाकार भाषित होती है इसलिए इसको जड़ चेतन की गांठ कहा गया है। विवेक ख्याति के द्वारा ही स्फुट–प्रज्ञालोक हो जाने के बाद विवेक–ख्याति से ही जड़–चेतन की गांठ खुल जाती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होने के बाद योगी निर्बीज समाधि को प्राप्त करता है। यही परम पुरुषार्थ है।

प्रश्न—योगाचार्य जी के उपदेश को सुन कर उनके जिज्ञासु बालक ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! निर्बीज समाधि को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को किन–किन उपायों का अवलम्ब लेना पड़ता है।

उत्तर—हे वत्स! इसके विषय में यद्यपि शास्त्रों के बहुत से मत है, जिनके विषय में हम आगे चल करके वर्णन करेंगे, किन्तु भगवान पतंजलि जी ने इस विषय में दो सूत्रों की रचना की जिसमें पहला—

(1) भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।

व

(2) श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

इस सूत्र के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों को इस योग की प्रतीति दो ही प्रकार से होती है उनमें (1) पहले प्राणी वे हैं जो अपने जन्म–जन्मान्तरों के अभ्यास से सम्प्रज्ञात योग की वितर्क और विचारानुगत समाधि में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुके हैं और बाद में अभी निर्बीज समाधि तक नहीं पहुँच पाये थे अभी उनको विवेक–ख्याति नहीं हुई थी। इतनी अवस्था में ही उनका देहपात हो गया, ऐसे योगी दो प्रकार के होते हैं उनमें से एक है—

(1) विदेह, दूसरे

(2) प्रकृतिलीन।

(1) विदेह—

वे कहलाते है, जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल महाभूतों का और उनके विशेषों का पूर्ण साक्षात्कार कर चुके हैं इसलिए वे शरीर की असलियत को समझकर के देहाभिमान से शून्य हो चुके है और इतनी साधना के बाद उनका शरीर छूट गया और वे सम्प्रज्ञात योग की आगे की सीढ़ियों तक नहीं पहुँच सके। अतः वे लोग विदेह कहलाते है और देवकोटि में माने जाते हैं, दूसरे प्राणी—

(2) प्रकृतिलीन—

वे योगी हैं जो स्थूल महाभूतों और उनके गुणों का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए निर्विचार समाधि में पंच तन्मात्र अहंकार और महत्तत्व और प्रकृति का साक्षात्कार करते हुए इन्हीं में लीन रहे हैं और आगे की भूमिका को तय नहीं कर पाये अचानक देहपात हो गया, इसलिए ये लोग प्रकृतिलीन कहलाते हैं।

काफी देर के सत्संग पश्चात् योगाचार्य व श्री तपोनिधि जी ने सत्संग को विश्राम दिया और अपनी शिष्य मण्डली को आदेश दिया कि वे अपनी–अपनी कुटियों में जाकर नित्य नैमित्यिक कर्म करते हुए अपने साधनाक्रम को चलायें।

||श्री रामलाल प्रभवे नमः|| ||श्री चन्द्रमोहन सद्गुरुदेव नमः||

तीन दिवसीय आध्यात्मिक योग सत्संग

आदरणीय समस्त गुरु भाई-बहिनों को सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि **योग योगेश्वर आनन्दकन्द महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज, श्री सद्गुरुदेव योगिराज अनन्त श्री विभूषित श्री चन्द्रमोहन जी महाराज** की असीम अनुकम्पा से तीन दिवसीय आध्यात्म यौगिक सत्संग एवं स्वास्थ्य शिविर का आयोजन परम श्रद्धेय तपोमूर्ति योगनिष्ठ योगाचार्य **सद्गुरुदेव डॉ. श्री दासलाल जी महाराज** के यौगिक संरक्षण में आयोजित किया जा रहा है।

अतः आप सभी से निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर अपने आत्मीयजनों एवं मित्रों के साथ इस पावन उत्सव में आकर योगसिद्धान्तों का श्रवण करें एवं सद्गुरु महिमा से अपने मन को पवित्र करते हुए शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति एवं आत्मिक आनन्द का पुण्य लाभ लें।

यह आयोजन निःशुल्क एवं समस्त मानव कल्याण के लिए है।

।। कार्यक्रम ।।

दिनांक 15 नवम्बर 2019 से 17 नवम्बर, 2019 तक

प्रातः—5 बजे से 7 बजे तक—आरती एवं ध्यान योग

7 बजे से 8:30 बजे तक—जीवन तत्त्व साधन एवं योग आसन व क्रियाएँ

8:30 बजे से 9 बजे तक—स्वल्पाहार

9 बजे से 12 बजे तक—दिव्य आरती व श्रीमद्भगवद् गीता पाठ एवं क्रिया लीलाएँ, संकीर्तन, योग-व्याख्यान

12 बजे से 1 बजे तक—भोग प्रसाद

1 बजे से 3 बजे तक—विश्राम

सायं—3 बजे से 5 बजे तक—महिला संकीर्तन

5 बजे से 6 बजे तक—संकीर्तन एवं जिज्ञासुओं से भेंट

6 बजे से 9 बजे तक—श्री प्रभुजी की आरती एवं योग सिद्धान्तों पर प्रवचन

9 बजे से—भोग प्रसाद एवं रात्रि-विश्राम

कार्यक्रम स्थल—श्री स्वामी गोकुलानन्द संन्यास आश्रम

सी.पी.डब्लू.डी. कॉलोनी के पीछे (पुलिस ग्राउण्ड के पास) काटोल रोड, नागपुर

।। निवेदक ।।

सिद्धयोग साधक मण्डल, नागपुर

सम्पर्क सूत्र—9823666950, 8329487378, 9423078112

नोट— रेल द्वारा आने वाले गुरु भाई-बहिनों से निवेदन है कि नागपुर रेलवे स्टेशन के प्लेटफॉर्म नं. 1 की तरफ से प्रि-पेड ऑटोबूथ पर आकर काटोल रोड पुलिस ग्राउण्ड के सामने गोकुलानन्द संन्यास आश्रम पर आने की कृपा करें।

मन का रूप रंग

सब बातें केवल मन पर ही अवलम्बित होती हैं यदि तुम्हारा मन बद्ध है तो तुम भी बद्ध हो जाते हो और यदि तुम्हारा मन मुक्त हैं तो तुम भी मुक्त हो जाओगे। मन का रंग पानी के समान है। जो रंग उसमें दिया जायगा, वही उसका रूप हो जायगा। उसमें लाल रंग डालो वह लाल दीख पड़ेगाख पीला रंग डालो पीला हो जायगा। मन स्वयं निर्गुण है। केवल स्थिति के कारण ही उसमें गुण या अवगुण दीख पड़ते है।

यदि मन को कुसंगति में लगाया जाय तो उसका परिणाम हमारे आचार–विचार और वाणी पर भी प्रकट होने लगता है। इसके बदले मन को यदि अच्छी संगति में लगा दिया जाय तो वह ईश्वर चिन्तन में रमण करने लगता है और फिर ईश्वर चर्चा के अलावा उसको और कुछ नहीं सुहाता।

ईश्वर की कृपा की पवन बराबर बहा करती है। जीवन रूपी समुद्र के चतुर मल्लाह इससे लाभ उठाने के लिए अपने मन का परदा हमेशा खुला रखते है और यही कारण है कि वे अपने गन्तव्य पर अति शीघ्र पहुँच जाते हैं।

–रामकृष्णा परम हंस

●●●

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________

____

____

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

अर्थात् : विनाशशील जड़वर्ग एवं अविनाशी जीवात्मा इन दोनों के संयोग से बने हुए व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप इस विश्व को परमेश्वर ही धारण और पोषण करता है। तथा जीवात्मा इस जगत् के विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के अधीन असमर्थ हो इसमें बँध जाता है। और उस परमदेव परमेश्वर को जानकर सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।